

केरलज्योति

केरल हिंदी प्रचार सभा
की मुख पत्रिका
(केंद्रीय हिंदी निदेशालय की
वित्तीय सहायता से प्रकाशित)

केरल हिंदी प्रचार सभा के संस्थापक

स्व. के वासुदेवन पिल्लै
पूर्व समीक्षा समिति
प्रो (डॉ) एन रवींद्रनाथ
डॉ के एम मालती
प्रो(डॉ) आर जयचन्द्रन
प्रो (डॉ) जयश्री एस आर
परामर्श मंडल
डॉ तंकमणि अम्मा एस
डॉ लता पी
डॉ रामचन्द्रन नायर जे
प्रबन्ध संपादक
गोपकुमार एस (अध्यक्ष)
मुख्य संपादक
प्रो डी तंकप्पन नायर
संपादक
डॉ. रंजीत रविशैलम
संपादकीय मंडल
अधिवक्ता मधु बी (मंत्री)
सदानन्दन जी
मुरलीधरन पी पी
प्रो रमणी वी एन
चन्द्रिका कुमारी एस
एल्सी सामुवल
आनन्द कुमार आर एल
प्रभन जे एस
डॉ नेलसन डी

सूचना : लेखकों द्वारा प्रकट किये गये
मत उनके अपने हैं। उनसे संपादक का
सहमत होना आवश्यक नहीं।

केरलज्योति

दिसंबर 2024

पुष्प : 61 दल : 9

अंक: दिसंबर 2024

अनुक्रमणिका

संपादकीय	5
बहुरंगी प्रतिभा के धनी डॉ सी वी आनंदबोस : एक लघु परिचय - अधिवक्ता (डॉ) मधु बी	6
श्रीनारायणगुरुचरित महाकाव्य - प्रो.डी.तंकप्पन नायर	7
आदिवासी जनजातीय जीवन : संस्कृति, समस्याएँ और समाधान - डॉ गोपकुमार जी	15
निष्ठा का सवाल उठाए अरसा गुज़र गया! - डॉ अनुज कुमार	21
हिंदी प्रवासी उपन्यास : दर्द और आशा के बीच का सफर - डॉ राजेश कुमार आर	28
हमारी संस्कृति में वृद्धों का स्थान - अच्चाम्मा अब्राहम	33
भाषा संस्कृति और साहित्य का अंतर्संबंध : भारतीय परिप्रेक्ष्य में - डॉ प्रीति के	35
आधुनिकता का पुनर्पाठ : नागार्जुन के उपन्यासों में - डॉ जी सुजीदा	38
गोवालपरिया लोकगीत : एक अनुशीलन - बर्णाली गोगोई	41
शायद.... कविवर के चिंतन (कविता) - आतिरा धनिष्ठा	44
'विटामिन ज़िंदगी' आत्मकथा में व्यक्त विकलांग पीड़ा - डॉ दीपक कुमार	45
लता अग्रवाल की कहानी 'सूनी कोख' में चित्रित नारी समस्याएँ - लावण्या बालकृष्णन	47
प्रश्नोत्तरी-डॉ.रंजीत रविशैलम	49
'बीज से फूल तक' कविता संग्रह में मृत्युबोध - प्रिन्सी मात्यु	50
प्रवासी साहित्य में चित्रित वृद्धावस्था - डॉ थैलिन	52
देवयानम् (आत्मकथा) मूल : डॉ.वी.एस. शर्मा, अनुवाद : प्रो. के.एन.ओमना	55
ज़िंदगी : एक लोलक (आत्मकथा) मूल : श्रीकुमारन तंपी अनुवाद : डॉ.पी.जे.शिवकुमार	57

मुखचित्र : पश्चिम बंगाल के राज्यपाल - डॉ सी वी आनंदबोस

लेखकों से निवेदनः

• हिन्दी और इतर भारतीय भाषाएँ, साहित्य, संस्कृति आदि पर लिखी गयी उच्च स्तरीय मौलिक एवं अप्रकाशित रचनाएँ आमंत्रित हैं। • भाषा, साहित्य, संस्कृति आदि पर आयोजित समारोहों, चर्चाओं, संगोष्ठियों के समाचारों का भी स्वागत है। इन समाचारों को प्रस्तुत करनेवाले का नाम और पूरा पता भी लिख भेजें। • भारतीय भाषाओं से अनूदित कविता, कहानी भी भेजें। उनके साथ मूल लेखक से प्राप्त अधिकार पत्र भी प्रेषित करें। • प्राकाशनार्थ रचनाएँ साफ-साफ अक्षरों में लिखकर अथवा टंकित कर या **डी.टी.पी.** करके **सी.डी.** में भेजें। कृपया कार्बन प्रति न भेजें। • स्वीकृत रचनाएँ यथासमय पत्रिका में प्रकाशित की जाएँगी। • आप ई-मेल द्वारा भी अपनी रचनाएँ भेज सकते हैं। ई-मेल में Microsoft Word or Pagemaker फाइल में भेजिए। ई-मेल आईडी : khpsabha12@gmail.com • अपनी रचना के साथ पूरा पता (जिला, राज्य और पिनकोड सहित), लघु परिचय और फोटो भी भेजें।

संपादक, 'केरल ज्योति', केरल हिन्दी प्रचार सभा,
तिरुवनन्तपुरम-695 014

सभा का मुख्यालय और उसकी गतिविधियाँ

केरल की राजधानी तिरुवनन्तपुरम के वषुतक्काडु में सभा का मुख्यालय स्थित है। सभा के मुख्य परिसर में सभा के संस्थापक मंत्री की पावन स्मृति में श्री वासुदेवन पिल्लै स्मारक हिंदी ग्रंथालय, स्नातकोत्तर अध्ययन अनुसंधान केंद्र, साहित्याचार्य महाविद्यालय, केंद्रीय हिंदी महाविद्यालय, टंकण और आशुलिपि संस्थान, परीक्षा भवन, राष्ट्रवाणी मुद्रणालय, राष्ट्रज्योति पब्लिशर्स के प्रकाशन अधिकारी का कार्यालय, हिंदी अध्यापक प्रशिक्षण महाविद्यालय (बी.एड) और केरल विश्वविद्यालय की मान्यता प्राप्त शोध केंद्र हैं।

विज्ञापन दर (साधारण अंक)

	मासिक	वार्षिक
आवरण पृष्ठ 4 (रंगीन)	रु.2500.00	25,000.00
आवरण पृष्ठ 2 एवं 3 (रंगीन)	रु.2000.00	20,000.00
साधारण पृष्ठ पूरा	रु.1000.00	10,000.00
साधारण पृष्ठ 1/2	रु.600.00	6,000.00
साधारण पृष्ठ 1/4	रु.350.00	3,500.00

एक प्रति का मूल्य रु. 25/- आजीवन चंदा : रु. 2500/- वार्षिक चंदा : रु. 250/-

A/c No. 57022786007 IFS Code : SBIN0070033
State Bank of India, Vazhuthacaud Branch

अधिक जानकारी के लिए संपर्क करें : मंत्री, केरल हिन्दी प्रचार सभा, वषुतक्काडु, तिरुवनन्तपुरम-695 014.
दूरभाष:0471-2321378, 2329200, 2329459. फैक्स:0471-2329200 ई-मेल : khpsabha12@gmail.com

केरलज्योति

सांस्कृतिक जागरण की मासिक पत्रिका

दिसंबर 2024



भारतीय भाषा दिवस

भारत के महान कवि एवं महान लेखक, पत्रकार, भारतीय स्वतंत्रता संग्राम के सेनानी और तमिलनाडु के समाज-सुधारकों में अग्रणी चिन्ना स्वामी सुब्रह्मण्यम भारती का जन्म दिन 'भारतीय भाषा दिवस' के रूप में मनाने का निर्णय शिक्षा मंत्रालय, भारत सरकार द्वारा किया गया है। इस का लक्ष्य छात्रों को भारतीय भाषाओं के बारे में जानकारी देना, लोगों को कुछ और भारतीय भाषाएँ सीखने के लिए प्रोत्साहित करना, संस्कृति, कला आदि में विविधता का उत्सव मनाने के लिए और लोगों को भारतीय भाषाओं के माध्यम से राष्ट्रीय एकता का अनुभव कराना है। प्रस्तुत कार्य वर्षों से केरल हिंदी प्रचार सभा कर रही है। इसलिए केरल हिंदी प्रचार सभा भी बड़े हर्ष और उत्साह से 11 दिसंबर को भाषा दिवस के रूप में मनायेगी। प्रस्तुत अवसर पर केरल की लोक नृत्य परंपरा में प्रमुख स्थान रखनेवाली 'तिरुवातिराक्कळि' का आयोजन राष्ट्रभाषा हिंदी के माध्यम से प्रस्तुत किया जाएगा। हमारी राय में, हमारा विश्वास है भारत में कहीं पर अब तक हिंदी के माध्यम से तिरुवातिराक्कळि

का प्रस्तुतीकरण नहीं हुआ है। यह कार्यक्रम अन्य भारतीय भाषाओं के लिए एक प्रेरणादायक कदम होगा। इसी प्रकार अन्य भारतीय भाषाओं के कार्यक्रमों की प्रस्तुति हिंदी के माध्यम से होगी तो वह राष्ट्रीय एकता और राष्ट्रीय अखण्डता की दिशा में एक महान और महत्वपूर्ण प्रयास होगा।

यह भी उल्लेखनीय है कि हिंदी के माध्यम से तिरुवातिराक्कळि नामक केरलीय लोकनृत्य के प्रस्तुतीकरण के पीछे केरल हिंदी प्रचार सभा के कलाप्रेमी मंत्री का सद्भावना-सहित उत्साह है।

जैसे देश भर में सितंबर 14 को हिंदी दिवस के रूप में, जनवरी 10 को विश्व हिंदी दिवस के रूप में मनाया जाता रहा है वैसे ही भारतीय भाषा उत्सव के रूप में 11 दिसंबर को भी अत्यंत उत्साह एवं राष्ट्रीय भावना से मनाना हर भारतीय का पुनीत एवं अपेक्षित कर्तव्य है।

प्रो.डी.तंकप्पन नायर
डॉ.रंजीत रविशैलम

बहुरंगी प्रतिभा के धनी डॉ सी वी आनंदबोस : एक लघु परिचय अधिवक्ता (डॉ) मधु बी



डॉ सी वी आनंदबोस एक सफल प्रशासक, श्रेष्ठ साहित्यकार, प्रतिबद्ध समाज सेवी, जनप्रिय कवि एवं कुशल समाज निरीक्षक के रूप में ख्यातिप्राप्त हैं। उनकी ज्यादातर रचनाएँ सामाजिक समस्याओं पर केंद्रित होने के कारण समाज को प्रकाशदायिनी है। उनमें परंपरा और आधुनिकता के बीच टकराव की स्थिति का सही चित्रण है। अपनी रचनाओं में वे अक्सर पौराणिक, ऐतिहासिक और दार्शनिक संदर्भों का उपयोग करते हैं। इससे रचनाओं में एक अपूर्व चारुता मिलती है। उनकी साहित्य रचनाओं में शासन एवं संस्कृति के विविध पहलुओं से संबद्ध विचारों की अतीव सुंदर और मार्मिक अभिव्यक्ति मिलती है। उनकी रचनाओं के अंतर्गत कविता, निबंध, कहानियाँ आदि शामिल हैं।

एक सफल लघुकथाकार के रूप में भी बोसजी को प्रशस्ति प्राप्त है। ज्यादातर लघुकथाएँ नैतिक विविधताओं को प्रतिबिंबित करनेवाली हैं। वे दैनंदिन जीवन के अवलोकनों पर आधारित हैं। उनमें मानवीय व्यवहार पर तीक्ष्ण टिप्पणियाँ प्रस्तुत होती हैं। पाठकों को इन कहानियों में हास्य और गहरी अंतरदृष्टि का संयोजन मिलता है। कहानियों के पात्रों के माध्यम से सामाजिक मुद्दों पर चर्चा भी होती है। उनकी कहानियों में सुधारवादी आदर्शों को माननीय करुणा के साथ जोड़कर सब को सोचने के लिए विवश करती हैं। इस तरह से ये रचनाएँ डॉ सी वी आनंद बोस को एक सामाजिक टिप्पणीकार के रूप में पेश करती हैं।

गरीबी, शिक्षा, असमानता जैसे मुद्दों को पात्रों के माध्यम से जीवंत बनाते हैं।

अपनी कविताओं में डॉ बोस मृत्यु और मौन जैसे अमूर्त विचारों को अभिव्यक्त करते हैं। उदाहरण के लिए उनकी मलयालम में रचित कविता 'मरणम् मरिच्चु' (मृत्यु मर गई) में मृत्यु को एक ऐसा जागरूक प्राणी के रूप में दिखाया गया है जो जीवन को देखता ही नहीं है बल्कि अपने अंत का चिंतन भी करती है। एक प्रकार से मृत्यु का व्यक्तिविकरण और जीवन की क्षण भंगुर प्रकृति का एक अनोखा दृष्टिकोण इस कविता में प्रकट हुआ है। उनकी साहित्यिक यात्रा में प्रकृति एक विषय मात्र नहीं है। वह मानव जीवन और संघर्ष का गहन रूपक भी है। इसके अलावा जीवन के गहरे अर्थों को खोजने के लिए भी प्रेरित करती है।

डॉ बोस एक ऐसे साहित्यकार हैं जो भारत की संस्कृति के साथ गहराई से जुड़े हुए हैं। उनकी दुनिया भर की यात्राओं से उन्होंने विश्व भर की सांस्कृतिक और सामाजिक स्थितियों का व्यापक अनुभव प्राप्त किया है जिनकी स्पष्ट झाँकी उनकी रचनाएँ प्रकट करती हैं। उनका वैश्विक दृष्टिकोण उनकी रचनाओं को संपन्न करनेवाला है। साथ ही साथ पाठकों को सामाजिक कल्याण की भावनाओं को पुष्टि करनेवाला है।

मंत्री
केरल हिंदी प्रचार सभा

केरलप्योति
दिसंबर 2024

श्रीनारायणगुरुचरित महाकाव्य

प्रो.डी.तंकप्पन नायर

दसवाँ सर्ग

मूर्कोत कुमारन, कुमारन आशान और डॉ.पल्पु

1. वास्तव में था गुरुदेव का जीवन एक यथार्थ अवधूत का मिलती थी जहाँ आराम करने की जगह ठहरते थे वहाँ खा लेते मिलता जो कुछ और रहते थे झोंपड़ियों में मछुवारों व दलितों की और बरामदे में मुस्लिम घरों के।
2. जिन से हुआ उनका संपर्क दिया प्यार सबको भरपूर दृढ़ विश्वास था उनका कि मानव सब एक हैं और जो भेदभाव किया जाता है जाति धर्म आदि के आधार पर वे सब हैं निरर्थक जिसे जाना उन्होंने अपने दिल व दिमाग से।
3. नारायणगुरु के जीवनीकारों में से एक हैं श्री मूर्कोत कुमारन लिखा जिन्होंने कि गुरुदेव ने प्राप्त की अध्ययन व तपस्या से ज्ञान सिद्धि तदनन्तर कार्यसिद्धि में उतरने के अंतराल में उन्होंने बिताया जीवन सामान्य लोगों के बीच में और उनको जाना निकट से।
4. गुरुदेव थे उत्सुक मछली पकड़ने में मछुआरों के साथ और उनकी मदद करने में वे थे तत्पर और मिलता जब अवकाश रात के समय बैठकर सम्मुख समुद्र के एकांत में ध्यान करते थे और होते थे मग्न परमात्मा में।
5. मछुआरे जब बहुत सुबह मछली पकड़ते थे तो गुरुदेव उनके साथ खींचते थे जाल और विश्वास था मछुआरों का कि यदि छू देते गुरुदेव जाल को तो उस दिन मिलेगी ज़्यादा मछली और कभी न आया अवसर उस विश्वास के भंग होने का।
6. कहते हैं जो मछलियाँ गुरुदेव को मिलती देते थे वे एक बूढ़ी गरीब औरत को और उन्होंने सिखाया था उसको रस्सी बनाने का काम नारियल के छिलके से जिससे न रही उनकी गरीबी और यों कई दृष्टांत हैं उनकी भूतदया के।
7. यह समाचार फैल गया इसी बीच सब कहीं कि गुरुदेव मरुत्वामला की तपस्या के अनन्तर भ्रमण कर रहे हैं गाँवों एवं बस्तियों में और जो लोग दिलचस्पी लेते थे अध्यात्म ज्ञान में वे लोग आते थे उनके पास अपने संदेह दूर करने को।

8. कुछ लोगों की दृष्टि में थे वे सनकी और पागल और करते थे परिगणित उन्हें भिखमंगे साधुओं में और यह सब जानकर उनके रिश्तेदारों को लगता नहीं था अच्छा किन्तु उनके रिश्तेदारों में से एकमात्र डॉ.पल्पु करते थे उनका आदर।
9. लिखा है उनके जीवनीकार मूकोत कुमारन ने सरस कवि मूलूर की यादों के आधार पर कि जब गुरुदेव रहते थे तिरुवनन्तपुरम के आसपास तब सोते थे मछुआरों की मछली पकड़ने के जालों पर निश्चिन्त होकर निशांत तक।
10. सुबह गुरुदेव उठकर चले जाते थे जब लोग जाते थे मछली पकड़ने को और उनके पैर दुखते नहीं थे तीस या चालीस मील रेतीले तटों से होकर चलने पर भी और कभी-कभी वे रहते थे मुसलमानों के साथ भी।
11. गुरुदेव उनके बच्चों को खिलाते थे खाना और चर्चाएँ भी करते थे मुसलमान पंडितों के साथ आध्यात्मिक विषयक और उनको मान्य था बादशाह शाहजहाँ के पुत्र दाराशिकोव द्वारा लिखित आध्यात्मिक ग्रंथों में वर्णित सूफी सिद्धांत।
12. मुसलमान पंडितों को मान्य था गुरुदेव के बताये कुरआन की कई आयतों का अर्थ और इसीलिए दक्षिणी तिरुवितांकूर के मुसलमान पंडितों को बड़ा आदर था गुरुदेव से और ईसाई पादरी भी करते थे सम्मान उनका।
13. चलते थे जब वे एक अवधूत के रूप में तब नटखट बालक उनपर फेंकते थे पत्थर और करते थे परिहास भी और कहा है उनके जीवनीकार मूकोत कुमारन ने इस संबन्ध में कि वे इन बातों पर निश्चिन्त थे और करते थे प्रेम सब के प्रति।
14. वे अपने अन्दर जनोपकारी अनर्घ शक्तियों को वहन करते हुए संपूर्ण दक्षिण भारत में पुण्य नदी कावेरी की तरह सबे के प्रति हितचिंतन के साथ यात्रा करते इस अज्ञात योगी को उस समय कम ही लोग पहचान पाये।
15. गुरुदेव पर लिखा है महाकवि कुमारनाशान ने कि उनकी प्रकृति थी शांत, मुखकांति थी तेज और करते थे यात्रा गाँवों एवं नगरों में अकेले ही और जहाँ वे दिखायी पडते थे इकट्ठी होती थी लोगों की भीड़।
16. भगवान कार्तिकेय की भक्ति थी अत्यन्त लोकप्रिय दक्षिण के सामान्य लोगों में और गुरुदेव ने रचना की थी अनेक स्तोत्रों की मलयालम व संस्कृत में और कहते हैं मलयालम में भगवान कार्तिकेय को सुब्रह्मण्य भी ।

17. कहा कुमारनाशान ने कि पश्चिमी शिक्षा से लोगों में फैले नास्तिक विचारों से मुक्त होने को आधार बना गुरुदेव का जीवन ही और लोग जो भी उन्हें देते थे खाने को उसे वे खा लेते थे और होते थे तृप्त।
18. कहते हैं किसी ने दिया था एक विषैला पदार्थ उन्हें खाने को किंतु वे बच गये सौभाग्य से और अपनी घुमक्कड़ प्रकृति के कारण टिकते नहीं थे कहीं भी ज़्यादा दिन और वे जगह-जगह भ्रमण करते हुए देते थे सदुपदेश।

ग्यारहवाँ सर्ग

अरुविप्पुरम

1. चुना गुरुदेव ने अपने भावी कर्मक्षेत्र के रूप में अरुविप्पुरम जंगली प्रदेश को जो स्थित है नेय्यार नदी के किनारे जो निकलती है अगस्त्यकूट पर्वत से और बहती है अरब सागर की ओर और अरुविप्पुरम है तिरुवनन्तपुरम से करीब बीस मील दूरी पर।
2. श्रीनारायण गुरु के ऐतिहासिक कर्मक्षेत्र के विषय में लिखा है महाकवि कुमारनाशान ने कि उस सुनसान प्रदेश के भव्य जल प्रवाह के चट्टानों से टकराते समय होती है जो गंभीर अनुगूँज और वह रमणीय जंगली प्रदेश एकान्तप्रिय उनको लगता था बहुत मोहक।
3. चट्टानों की वजह नदी में बनता है एक छोटा-सा जलप्रपात एक गंभीर अनुगूँज भी सुनायी पडती है सदा ही और कहते हैं चीते बाघ भालू बड़े बड़े साँप आदि जीव रहते थे उन दिनों और दोनों किनारों की पहाडियों में आबादी नहीं के बराबर थी।
4. नदी के पूरबी तट पर गुफ्रायें हैं ऐसी जिन में गरमी और बारिश में बैठा जा सकता है आराम से और पूरबी तट पर स्थित ऊँची पहाड़ी के पास भी एक गुफ्रा है बड़ी जिसमें अकेले रहकर कुछ समय साधना की थी गुरुदेव ने।
5. वह ऐतिहासिक कालखंड था गुरुदेव के जीवन का जिसके बारे में लिखा है उनके प्रिय शिष्य महाकवि कुमारनाशान ने कि गुरुदेव वहाँ चट्टानी गुफ्राओं में बिना किसी भोजन के और अपनी उपस्थिति की जानकारी दिये बिना रहते थे ध्यानमग्न।
6. ध्यानलीन गुरुदेव को दैवी प्रेरणा हुई जाति-राक्षस से पीडित हिन्दू समाज के पिछड़े दलित और आदिम जन-विभागों को ज्ञान का प्रकाश देने की और उनको आध्यात्मिक व भौतिक प्रगति-पथ पर ले जाने की।

शिवलिंग की प्रतिष्ठा

1. धीरे धीरे पता मिला लोगों को अरुविप्पुरम में गुरुदेव के आगमन का और उनके पहाड पर निवास का और पासवाले ग्रामवासी कुछ भक्त आने लगे खाने की चीज़ें लेकर भोजन बनाते गुरुदेव के लिए खिलाते उन्हें और स्वयं भी खाते थे और गुरुदेव के सान्निध्य से अरुविप्पुरम न रही सुनसान जगह और उनके अभाव में भी लोग आते थे करने नदी-स्नान व प्रार्थना।
2. उस सुनसान जंगली प्रदेश में आने लगे लोग दूर दूर से रोगों के लिए उपचार करने, भूतप्रेत की बाधा दूर करने सही मार्गदर्शन और उपदेश प्राप्त करने और शास्त्रार्थ करने को यों स्वामी पर आ गया दायित्व मार्गदर्शन और आशीर्वाद का।
3. चावल आदि के साथ आते थे वहाँ गृहस्थ भक्त विविध प्रदेशों से भोजन बनाते गुरुदेव के लिए खिलाते उन्हें और स्वयं भी खाते थे और गुरुदेव के सान्निध्य से अरुविप्पुरम न रही सुनसान जगह और उनके अभाव में भी लोग आते थे करने नदी-स्नान व प्रार्थना।
4. उन दिनों प्रवेश निषिद्ध था मंदिरों में पिछड़े दलित वर्गों को लेकिन किसी पात्र में दान-दक्षिणा रखकर खड़े हो सकते थे दूर और मंदिर का प्रसाद उन्हें वहाँ फेंक दिया जाता था उतनी कठोर थी अस्पृश्यता की भावना जिससे गुरुदेव हुए खिन्न।
5. गुरुदेव ने बताया उनसे मिलने आये कुछ भक्तों को कि वहाँ कोई आराधनालय हो लोगों की आराधना को तो होगा बहुत अच्छा किन्तु मंदिर या भवन बनाने को आवश्यक सामग्री जुटाना मुश्किल था वहाँ।
6. ऐसी चीज़ों की माँग न की गुरुदेव ने उनसे और संकल्प किया नदी के पूर्वी तट के एक चट्टान को पीठ रूप में अनन्तर शिवलिंग की आकृति के एक पत्थर को लिया जो नदी में पड़ा था और किया प्रतिष्ठित शिवलिंग रूप में।
7. शिवलिंग रूप में एक पत्थर को प्रतिष्ठित करने के स्वामीजी का उद्देश्य जानकर आवश्यक आयोजन किया कुछ लोगों ने और यह जानकर स्वामीजी वहाँ बैठे हैं शिवरात्रि जागरण के लिए कुछ भक्त जन भी पहुँचे वहाँ।
8. वहाँ कुछ फूल इकट्ठे किये गये थे मूर्तिस्थापना के लिए और शहनाई जैसा वाद्य नादस्वर का भी प्रबंध किया गया

- एक पंडाल छाया हुआ था चट्टान के ऊपर और आधी रात को आए गुरुदेव पंडाल में स्नान कर प्रतिष्ठा करने को।
9. गुरुदेव ने उठायी प्रतिष्ठित करने की शिला हाथ में और खड़े रहे रात के तीन बजे तक ध्यानमग्न हुए उस समय तेजोमय था उनका मुखमंडल और बह रही थी नयनों से अश्रुधारा भक्तिघोतक और था सारा वातावरण भक्तिमय।
 10. भक्ति के आवेग में खड़े रहे चारों ओर सारे दर्शक और जप रहे थे 'ॐ नमः शिवाय' और उस समय प्रतिष्ठित किया गया उस शिला को चट्टान की पीठ पर गुरुदेव ने और किया अभिषेक भी अपने हाथों से।
 11. यह ऐतिहासिक शिवलिंग-प्रतिष्ठा हुई सन् अठारह सौ अठासी के शिवरात्रि के दिन जिसका है महत्व इसलिए कि अछूत जाति के एक अब्राह्मण द्वारा करना शिवलिंग की प्रतिष्ठा एक क्रांतिकारी घटना थी सांस्कृतिक इतिहास में।
 12. वह थी एक अनहोनी बात और था एक नई आध्यात्मिक क्रांति का उद्घोष भी और स्थापित मंदिर में प्रस्तुत उद्घोष का वाक्य था काव्यांश के रूप में जो देता है महान संदेश मानव एकता एवं भातृत्व का।
 13. उद्घोष यही था कि जातिभेद और धर्मविद्वेष के बिना जहाँ सभी भाईचारे से रहते हैं वह आदर्श स्थान है यह इस काव्यांश ने मचाया उथल-पुथल पूरे समाज में और मिली नई स्फूर्ति एवं नई दृष्टि समाज-सुधारकों को।

तेरहवाँ सर्ग

स्वामी विवेकानन्द का और गुरुदेव का

आध्यात्मिक क्रांति का उद्घोष

1. स्वामी विवेकानन्द ने किया था जो उद्घोष सन् अठारह सौ तिरानबे के शिकागो भाषण से महान आध्यात्मिक संस्कृति और विश्वबन्धुत्व का उससे पाँच वर्ष पूर्व शिवमंदिर निर्माण से कर चुके थे गुरुदेव आध्यात्मिक क्रांति का उद्घोष।
2. एक संयोग ही था कि पाँच साल पश्चात विवेकानन्द ने की व्याख्या गुरुदेव के तत्त्वों की अमेरिका में अपने भाषणों में उसी कारण मान सकते हैं गुरुदेव को नई आध्यात्मिक क्रांति के अग्रदूत के रूप में और प्रतीक सच्ची मानवता के भी।

3. जब से हुई स्थापना अरुविप्पुरम में शिवमंदिर की आने लगे तब से वहाँ अनेक लोग और बढ़ने लगी आमदनी मंदिर की दान-दक्षिणा आदि से और छत समेत शिवलिंग का और एक भव्य मंदिर का भी हुआ निर्माण।
4. प्रशिक्षित कर कुछ अब्राह्मण शिष्यों को गुरुदेव ने बनाये उन्हें इस मंदिर के पुजारी और अपने शिक्षित शिष्यों की मदद से एक पाठशाला भी स्थापित की वहाँ और उस पाठशाला के बच्चों को वे शिष्य ही पढ़ाने लगे मलयालम आदि विषय।
5. इससे होकर अत्यधिक प्रसन्न पाठशाला की ज़मीन के मालिक कोच्चुकुट्टी वैद्य ने दान में दे दी सारी ज़मीन गुरुदेव के नाम वहाँ पर होने से पानी का निर्मल स्रोत बनाया गया एक भव्य मठ भी और शनैः शनैः फैल गया सब कहीं यह वृत्तान्त।
6. मठ और मंदिर की वजह हो गया बहुत प्रशस्त अरुविप्पुरम और अठारह सौ अठानबे में मंदिर व मठ की देखरेख के लिए गुरुदेव ने बनाया एक संघ स्थानीय सज्जनों को मिलाकर अरुविप्पुरम क्षेत्रयोगं नाम से और मंदिर व मठ की प्रशस्ति बढ़ी।
7. पूरे केरल में एवं दक्षिण भारत में लोगों को पता चला इस मंदिर के बारे में तो माँग आने लगी स्वामीजी के पास दूसरे प्रदेशों से भी इस तरह के मंदिर बनाने की और इसी बीच एक घटना घटी ऐतिहासिक महत्व की।
8. तुरंत बाद शिवलिंग की प्रतिष्ठा के पूछा गया गुरुदेव से कि क्या ब्राह्मणों के अलावा दूसरी जाति के व्यक्ति को अधिकार है शिवलिंग की स्थापना का तो तुरंत जवाब देकर उन्होंने चुप कर दिया प्रश्नकर्ता को।
9. बताया उन्होंने कि मैं ने तो ईष्रव शिव की प्रतिष्ठा की है और उस समय ईष्रव जाति जानी जाती थी अस्पृश्य किन्तु स्थिति बदल गयी है कालांतर में और मानी जाती है पिछड़े वर्ग में और उस समय का जवाब था क्रांतिकारी।
10. उन्होंने की स्थापना कई सामाजिक संस्थाओं की भी जिनका था लक्ष्य समाज में सांस्कृतिक नवजागरण करना परिणामस्वरूप प्रक्रिया गतिशील हुई नई जागृति की और आध्यात्मिक क्रांति का नवतरंग पैदा हुआ अवर्णों में।
11. अरुविप्पुरम मंदिर के साथ ही स्थापित किया गुरुदेव ने एक संन्यासी मठ भी जिसके द्वारा हुआ एक सफल प्रयास आध्यात्मिक ज्ञान फैलाने का जिससे दूर हुए जनता में व्याप्त कई अनाचार और अंधविश्वास।

12. उन दिनों ईष्रव लोगों के देवी-मंदिरों में प्रचलित था रिवाज बलि चढ़ाने का बकरी मुर्गा आदि का और गुरुदेव ने किया दृढ़ निश्चय जंतु-हिंसा को रोकने का और उसकी जगह सात्विक आराधना-पद्धतियाँ शुरू करने का।
13. लोगों के विचारों में लाने को बदलाव और उन्हें प्रगति-पथ पर ले जाने को गुरुदेव ने की नई उद्भावनायें और छपवाकर भूत-प्रेतादि की आराधना के दोषों पर लिखित लेखों को लोगों में वितरण करने का कराया प्रबंध।
14. साथ ही दिया निर्देश उन्होंने वक्ताओं को बोलने को भाषणों में इस बारे में और जल्दी ही अरुविष्णुरम में बन गया एक संन्यासी मठ जहाँ श्रद्धावान युवा लोग आकर कुछ दिन रहने लगे शिष्यों के रूप में।

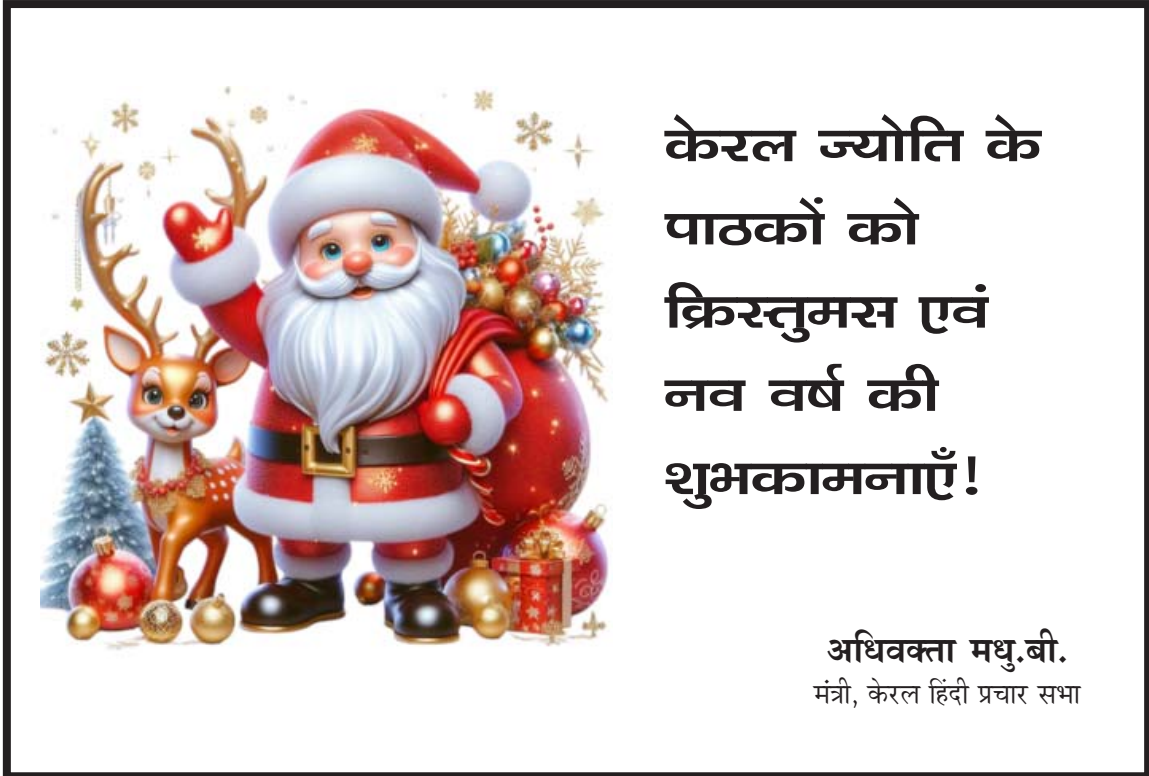
चौदहवाँ सर्ग

मंदिरों और मठों की स्थापना

1. किया है उल्लेख कुमारन आशान ने गुरुदेव की जीवनी में कि मंदिरों-मठों की स्थापना के पश्चात दिया था गुरुदेव ने एक महत्वपूर्ण संदेश जनहित में सन् उन्नीस सौ सत्रह में कि उन मंदिरों की अपेक्षा ज़्यादा आवश्यक है शिक्षा-संस्थाओं की।
2. कहा उन्होंने कि आगे मंदिरों के निर्माण को न दें प्रोत्साहन क्योंकि कम हो रही है मंदिरों में लोगों की आस्था और हो सकता है लोगों को पश्चात्ताप भी कि मंदिर बनाने को किया खर्च एक तरह का अपव्यय है, अतएव बनावें विद्यालयों को।
3. यदि आवश्यक हो तो बनावें छोटे मंदिर किन्तु प्रमुख मंदिर होंगे विद्यालय ही और मंदिर होंगे सहायक पैदा करने को स्वच्छता की भावना और कहा गुरुदेव ने स्पष्टतया कि आगे प्रचार होना चाहिए विद्यालयों की स्थापना का।
4. था उनका स्पष्ट विचार कि जनता की उन्नति का प्रमुख उपाय है ज्ञान प्रदान करना और मिली इस विचार से बड़ी प्रेरणा तत्कालीन समाज को और उनके द्वारा स्थापित स्कूलों में शुरू किया गया प्रशिक्षण विभिन्न पेशों में भी।
5. मुरुकुंपुष्पा नामक जगह पर स्थापना हुई गुरुदेव के आदेश पर पंचलोहों से निर्मित एक वृत्ताकार प्रभा की जिसके मध्यभाग में लिखा हुआ है 'ॐ' और उसके चारों ओर अंकित किया गया है 'धर्म' 'दया' और 'शांति'।

6. इसी तरह कळवंकोट नामक जगह पर भी उन्होंने स्थापना की एक भव्य मंदिर की जिसमें मूर्ति की जगह प्रतिष्ठा की गयी है एक दर्पण की और अंकित है उस दर्पण के मध्य में आध्यात्मिकता का प्रतीक 'ॐ' शांति का मंत्र।
7. था गुरुदेव का उद्देश्य इन मंदिरों का शिक्षा विकसित करने का एवं सांस्कृतिक गतिविधियों के केन्द्रों के रूप में और किया गया यह प्रबन्ध भी कि इन में समाज के सभी उपेक्षित वर्गों दलितों और सब धर्मों के लोगों को प्रवेश देने के लिए।
8. स्थापना से आश्रमों, मठों मंदिरों और आध्यात्मिक संगठनों की पूरे समाज में उभर आयी आध्यात्मिक क्रांति की एक नई लहर खासकर हाशिये पर खड़े हुए बहुसंख्यक लोगों में और दूर हुई उनकी हीन भावना और पायी नवचेतना।

(क्रमशः)



आदिवासी जनजातीय जीवन : संस्कृति, समस्याएँ और समाधान

डॉ गोपकुमार जी



भारत के सांस्कृतिक और ऐतिहासिक धरोहर में आदिवासी समाज का महत्वपूर्ण स्थान है, जो अपने इतिहास, परंपराओं और जीवनशैली के माध्यम से प्रकृति से गहरे रूप से जुड़ा हुआ है। इस शोधपत्र में आदिवासी समाज के इतिहास, संस्कृति, धार्मिक विश्वास, शिक्षा, भाषा, साहित्य, सामाजिक-आर्थिक संरचना और सरकारी योजनाओं पर समग्र दृष्टिकोण प्रस्तुत किया जाएगा।

आधुनिक युग में आदिवासी विमर्श साहित्य और समाज के मुख्य मुद्दों में से एक बन चुका है। जहाँ पहले आदिवासी समाज को मुख्यधारा से अलग और पिछड़ा हुआ माना जाता था, वहीं अब उनके संघर्षों, परंपराओं और सांस्कृतिक धरोहरों पर गहन चर्चा हो रही है। शिक्षा और जागरूकता ने आदिवासी समाज को शोषण और अन्याय के खिलाफ खड़ा होने की शक्ति दी है। आदिवासी साहित्य, जिसे आदिवासी और गैर-आदिवासी लेखकों ने समृद्ध किया है, उनके जीवन और सांस्कृतिक धरोहर को समझने का एक साधन बन गया है। यह साहित्य समाज में आदिवासियों की छवि को बदलने में महत्वपूर्ण भूमिका निभा रहा है, जिससे उनके प्रति धारणा में परिवर्तन आया है।

आदिवासी समुदाय का भारत में एक प्राचीन इतिहास है, जो सिंधु घाटी सभ्यता से भी पहले का माना जाता है। उनका जीवन हमेशा से प्रकृति के साथ गहरा संबंध रखता आया है, जिसमें जंगल, पहाड़, और नदियाँ उनके जीवन के अभिन्न अंग रहे हैं। विद्वानों का मत है कि पूर्व-आर्य युग में भी आदिवासी समाज ने प्राकृतिक संसाधनों का संरक्षण और उपयोग किया। यह सांस्कृतिक जुड़ाव केवल भौतिक संसाधनों तक सीमित नहीं था, बल्कि उनके धार्मिक और सांस्कृतिक विश्वासों में भी परिलक्षित होता था, जिसमें प्रकृति पूजा का महत्वपूर्ण स्थान था। इस प्रकार, आदिवासी समाज का प्रकृति से गहरा संबंध न केवल उनके जीवन के आधार पर केंद्रित है, बल्कि यह उनकी धार्मिक और सांस्कृतिक मान्यताओं में भी निहित है।

उत्तर, उत्तर-पूर्वी, और मध्य भारत आदिवासी जनजातियों का प्रमुख निवास क्षेत्र हैं। संथाल, मिजो, गोंड, और नागा

जैसी जनजातियाँ यहाँ की विशिष्ट पहचान हैं। इनके धार्मिक विश्वास प्रकृति के साथ गहराई से जुड़े होते हैं। संथाल और मिजो जनजातियाँ कृषि पर निर्भर हैं, जबकि नागा जनजाति अपनी सामाजिक संरचना में दक्षता के लिए जानी जाती है। पश्चिमी और दक्षिणी भारत में भी विभिन्न जनजातियाँ निवास करती हैं। पश्चिमी भारत में भील, वारली, और कोली जनजातियाँ प्रमुख हैं, जबकि दक्षिण भारत में टोडा, कोटा, और कुडियार जनजातियाँ जानी जाती हैं। ये अपनी पारंपरिक कलाओं और हस्तशिल्प के लिए प्रसिद्ध हैं, जैसे टोडा जनजाति की विशेष बुनाई कला और भील जनजाति की कृषि पर निर्भरता।

मध्य भारत में गोंड, भील, और मुंडा जनजातियाँ अपनी संस्कृति, कला, और भाषाई विविधता के लिए प्रसिद्ध हैं। यहाँ झूम खेती और प्राकृतिक संसाधनों पर निर्भरता की परंपरा अभी भी विद्यमान है। सामाजिक और धार्मिक जीवन में स्थानीय देवी-देवताओं की पूजा महत्वपूर्ण स्थान रखती है।

आदिवासी समाज में धर्म का एक प्रमुख अवयव प्रकृति पूजा है। वे प्रकृति को मातृशक्तिके रूप में पूजते हैं, और उनके धार्मिक अनुष्ठानों में वनों, नदियों, पर्वतों और वृक्षों का प्रमुख स्थान होता है। आदिवासी समुदायों में प्रकृति को दिव्य मानने की परंपरा केवल धार्मिक आस्था का प्रतीक नहीं है, बल्कि यह पर्यावरणीय संरक्षण के प्रति उनके दृष्टिकोण को भी दर्शाती है। रमणिका गुप्ता के शब्दों में, “हम प्रकृति पर प्रभुत्व स्थापित करने के इच्छुक नहीं हैं, न ही उसपर वर्चस्व स्थापित करना चाहते हैं। हम सहजीवन में विश्वास करते हैं, विनाश में नहीं।” आदिवासी समाज के इस दृष्टिकोण से यह स्पष्ट होता है कि उनका धर्म और प्रकृति के प्रति सम्मान एक-दूसरे से गहरे रूप से जुड़े हुए हैं।

धार्मिक अनुष्ठानों और उत्सवों का आदिवासी समाज के जीवन में महत्वपूर्ण स्थान है। उदाहरण के लिए, सरहुल और करमा जैसे उत्सव न केवल धार्मिक आस्था को प्रकट

करते हैं, बल्कि सामुदायिक संगठन और सामाजिक एकता को भी बढ़ावा देते हैं। सरहुल उत्सव वसंत ऋतु में मनाया जाता है, जब नए पत्तों का प्राकट्य होता है, जो पृथ्वी देवी की आराधना का प्रतीक है। करमा उत्सव सामुदायिक एकता और भाईचारे का प्रतीक है, जिसमें सामूहिक नृत्य और गीतों के माध्यम से प्रकृति की उपासना की जाती है। इन उत्सवों के माध्यम से आदिवासी समाज के धार्मिक और सांस्कृतिक दृष्टिकोण में प्रकृति के प्रति गहरा सम्मान दिखाई देता है।

आदिवासी संस्कृति में लोकगीत और कथाएँ पीढ़ियों से चली आ रही परंपराओं का अभिन्न हिस्सा रही हैं। इन गीतों और कथाओं में न केवल आदिवासी जीवनशैली का सजीव चित्रण मिलता है, बल्कि उनके संघर्ष, प्रेम, और प्रकृति के प्रति दृष्टिकोण भी साफ तौर पर उभरते हैं। उदाहरण के लिए, संथाली और भीली लोककथाएँ मानव और प्रकृति के बीच संतुलन की गाथाओं को सामने लाती हैं। यह परंपरा केवल मनोरंजन का साधन नहीं है, बल्कि ज्ञान और अनुभव को पीढ़ी दर पीढ़ी हस्तांतरित करने का एक महत्वपूर्ण माध्यम है।

हालांकि, इन समुदायों में शिक्षा का स्तर निम्नतर रहा है। इसका मुख्य कारण शैक्षणिक संस्थानों की कमी, आर्थिक कठिनाइयाँ, और शिक्षा के प्रति जागरूकता की कमी है। इस चुनौती से निपटने के लिए सरकार ने 'एकलव्य मॉडल आवासीय विद्यालय' और 'शिक्षा का अधिकार' (आरटीई) जैसी योजनाएँ शुरू की हैं, ताकि इन समुदायों के बच्चों को बेहतर शैक्षिक अवसर मिल सकें और वे मुख्यधारा में शामिल हो सकें। इसके बावजूद, पारंपरिक ज्ञान की महत्ता अभी भी इन समाजों में बनी हुई है। औषधीय वनस्पतियों का उपयोग, प्राकृतिक कृषि पद्धतियाँ, और जल संरक्षण के पारंपरिक उपाय अब भी इनके जीवन का हिस्सा हैं। वर्तमान समय में यह समुदाय आधुनिक शिक्षा के साथ-साथ अपने पारंपरिक ज्ञान को संरक्षित और संवर्धित करने की कोशिश कर रहे हैं, जो उनकी सांस्कृतिक पहचान का मूल आधार है।

साहित्य के क्षेत्र में, यह समुदाय महज सहानुभूति का पात्र नहीं रहा है, बल्कि उनके जीवन संघर्षों से प्रेरित साहित्य अब समाज के महत्वपूर्ण विमर्श का हिस्सा बन चुका है। भाषाई विविधता के मामले में भी यह समाज बेहद

समृद्ध है। उदाहरण के लिए, संथाली भाषा को भारतीय संविधान में मान्यता प्राप्त होना इस बात का प्रमाण है कि आदिवासी भाषाओं का साहित्यिक और सांस्कृतिक महत्व अत्यधिक पुराना और महत्वपूर्ण है। गोंडी, भीली, और मुंडारी जैसी भाषाओं में समृद्ध लोक साहित्य मौजूद है, जो उनके संघर्षों, जीवनशैली और सांस्कृतिक मूल्यों को प्रदर्शित करता है। इन भाषाओं के संरक्षण के लिए भी निरंतर प्रयास किए जा रहे हैं, ताकि उनकी सांस्कृतिक धरोहर सुरक्षित रह सके।

आधुनिक साहित्य की पृष्ठभूमि में मौखिक परंपराओं का गहरा प्रभाव दिखाई देता है। देश में तीन सौ से अधिक भाषाओं में मौखिक साहित्य की समृद्ध परंपरा है, जिसे 'पुरखौती' के नाम से जाना जाता है। यह साहित्य प्रकृति, प्रेम और संघर्ष से समृद्ध है और कई क्षेत्रों में इसे संकलित करने का कार्य शुरू हो चुका है। स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद जयपाल सिंह मुंडा जैसे नेताओं ने साहित्यिक क्षेत्र में इन समुदायों की आवाज़ को बढ़ावा दिया, और अब समकालीन लेखन में यह आवाज़ बाहरी शोषण, अस्मिता की खोज, और अस्तित्व के संकटों पर केंद्रित है।

पुरखौती साहित्य के साथ-साथ समकालीन लेखन में भी यह दृष्टिकोण उभर कर सामने आया है कि क्या समाज, इतिहास, और घटनाओं के विश्लेषण के लिए कोई विशिष्ट आदिवासी दृष्टिकोण हो सकता है। यह सवाल 1978 में प्रोफेसर वीरभारत तलवार ने उठाया था, जो आज के संदर्भ में पुनः प्रासंगिक हो गया है। समकालीन लेखन अस्मिता और अस्तित्व के संघर्षों का साहित्यिक प्रतिबिंब है, जिसमें शोषण के विविध रूपों का अनावरण किया गया है। संथाली साहित्य, उदाहरणस्वरूप, सामाजिक उत्पीड़न और उनके संघर्षों का विस्तृत वर्णन करता है। समकालीन लेखन ने इन समुदायों को एक विशिष्ट मंच प्रदान किया है, जिससे उनकी सांस्कृतिक पहचान संरक्षित हो रही है और उनकी आवाज़ें प्रखर हो रही हैं।

हिंदी साहित्य में भी आदिवासी साहित्य पर व्यापक स्थ से कार्य किया गया है। इस लेखन में सुशीला सामंत, वंदना टेटे, रमणिका गुप्ता, रणेन्द्र, और निर्मला पुतुल जैसी प्रमुख हस्तियों ने महत्वपूर्ण योगदान दिया है। इन लेखकों ने विभिन्न विधाओं के माध्यम से समुदायों की संस्कृति, संघर्ष और अस्मिता को सशक्त रूप से उजागर किया है। आदिवासी

साहित्य केवल विद्रोह की तीव्रता या सामाजिक संरचना की चुनौती तक सीमित नहीं है, बल्कि यह अस्वीकार और अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता का साहस भी प्रदर्शित करता है। यह साहित्य जीवन मूल्यों को पुनः परिभाषित करता है, उन मूल्यों का निषेध करता है जो आदिवासी समाज के अनुकूल नहीं हैं, और उनके सर्वांगीण विकास के प्रश्नों को केंद्र में रखता है। साहित्य के इस व्यापक और बहुआयामी स्वस्थ ने आदिवासी समुदायों की सांस्कृतिक धरोहर को सशक्त रूप से स्थापित किया है।

आदिवासी साहित्य में आत्मकथात्मक लेखन का अभाव इस बात का संकेत है कि यह समाज व्यक्तिगत 'मैं' के बजाय सामुदायिक 'हम' के सिद्धांत को महत्व देता है। नब्बे के दशक के बाद हिंदी और अन्य भाषाओं में लेखकों की संख्या में उल्लेखनीय वृद्धि हुई, जिन्होंने अपने लेखन के माध्यम से इन समुदायों के जीवन संघर्षों को साहित्यिक रूप से प्रस्तुत किया। रामदयाल मुंडा, मंजू ज्योत्सना, और निर्मला पुतुल जैसे प्रमुख लेखक अपनी मातृभाषाओं के साथ-साथ हिंदी में भी साहित्य सृजन कर रहे हैं, जो उनकी संस्कृति और प्रतिरोध को अभिव्यक्त करता है।

मेन्स ओडेय का 'मतुराअ कहनि' मुंडारी उपन्यास, जो 20वीं शताब्दी के दूसरे दशक में लिखा गया था, आदिवासी साहित्य के प्रारंभिक उदाहरणों में से एक है। वर्तमान में, हर साल सैकड़ों किताबें विभिन्न भाषाओं में प्रकाशित हो रही हैं, परंतु उनकी स्पष्ट पहचान की कमी के कारण इन्हें कभी लोक साहित्य, तो कभी लोक कथाओं के रूप में वर्गीकृत किया जा रहा है। इस असमंजस के बावजूद, यह साहित्य अपनी जड़ें गहराई से कायम रखता है।

आधुनिक हिंदी आदिवासी कविता की शुरुआत रामदयाल मुंडा की कविताओं से मानी जाती है, जिन्होंने मुंडारी और हिंदी दोनों में कविताएँ लिखीं। उनके बाद ग्रेस कुजूर, रोज केरकेट्टा, और अनुज लुगुन जैसे कवियों ने भी महत्वपूर्ण योगदान दिया। कथा साहित्य में वाल्टर भेंगरा 'तरुण' और पीटर पौल एक्का जैसे लेखकों ने प्रमुखता प्राप्त की है, जिन्होंने सैकड़ों कहानियाँ और उपन्यास लिखे हैं।

इन समुदायों के लिए वन भोजन, औषधियाँ और अन्य आवश्यक वस्तुओं का स्रोत हैं, जो उनके जीवन की आधारशिला बने हुए हैं। आदिवासी दर्शन और साहित्य की

कैलव्योति

दिसंबर 2024

परिभाषा इस प्रकार है: "सृष्टि सर्वोच्च नियामक सत्ता है। संपूर्ण सजीव और निर्जीव जगत तथा प्रकृति का अस्तित्व समान है। मनुष्य का धरती, प्रकृति और सृष्टि के साथ सहजीवी संबंध है।"²

हालांकि भूमि अधिकारों से संबंधित संघर्ष, इन समुदायों के जीवन में सबसे बड़ी चुनौती है। मदन कश्यप की कविता 'आदिवासी' इस दर्द को बखूबी उजागर करती है, जहाँ वह विकास के नाम पर किए जा रहे विस्थापन और प्राकृतिक संसाधनों के हास को व्यक्त करते हैं। खनन, बाँध निर्माण, और औद्योगिक परियोजनाओं के कारण पारंपरिक भूमि से विस्थापित होना इन समुदायों की आजीविका और सांस्कृतिक पहचान को गंभीर संकट में डाल रहा है।

कल एक पहाड़ को ट्रक पर जाते हुए देखा, / उससे पहले नदी गई, / अब खबर फैल रही है कि/मेरा गाँव भी यहाँ से जाने वाला है।

विकास परियोजनाओं के तहत सरकार ने कई योजनाएँ बनाईं, जिनसे वनवासियों को उनके जंगलों और भूमि से बेदखल किया गया। इसके परिणामस्वरूप गरीबी, अशिक्षा, और बेरोजगारी जैसी समस्याएँ बढ़ी हैं। आधुनिकता और परंपराओं के बीच का यह संघर्ष उनके जीवन का एक प्रमुख हिस्सा बन गया है। औद्योगिकीकरण और शहरीकरण के प्रभाव में उनकी सांस्कृतिक धरोहर विलुप्त होने के कगार पर है, जिससे उनकी पहचान और पारंपरिक जीवनशैली को सुरक्षित रखने के प्रयासों को कठिनाई का सामना करना पड़ रहा है।

सरकार द्वारा बनाई गई कई योजनाओं के परिणामस्वरूप वन और जमीन से विस्थापित होने के कारण इन समुदायों को गरीबी, अशिक्षा, और बेरोजगारी जैसी गंभीर समस्याओं का सामना करना पड़ रहा है। आधुनिकता और परंपराओं के बीच संघर्ष बढ़ता जा रहा है, और औद्योगिक विकास, शहरीकरण, एवं आधुनिक शिक्षा के प्रभाव से उनकी पारंपरिक संस्कृतियों के विलुप्त होने का खतरा मंडरा रहा है। इस संघर्ष में उनकी सांस्कृतिक पहचान संकटग्रस्त हो गई है, और अपनी परंपराओं को संरक्षित रखने के लिए उन्हें कई चुनौतियों का सामना करना पड़ रहा है।

सन् 1913 में राजस्थान के बाँसवाड़ा क्षेत्र के मानगढ़ पहाड़ी पर गोविन्द गुरु के नेतृत्व में हुआ विद्रोह

औपनिवेशिक शक्तियों के दमन के खिलाफ उठने वाला एक ऐतिहासिक कदम था। हालाँकि, इस घटना को इतिहास में वह महत्त्व नहीं मिला, जिसका यह हकदार था। इस उपेक्षित विद्रोह को हरिराम मीणा ने अपने उपन्यास 'धूणी तपे तीर' में साहित्यिक रूप दिया। इससे पहले के लेखकों ने इन विद्रोहों को एक रूमानी दृष्टिकोण से देखा था और उनका दायरा सीमित रहा था, परंतु मीणा ने इसे विस्तार से उकेरा। इन क्षेत्रों में स्वास्थ्य सेवाओं का अभाव भी गंभीर समस्याओं का कारण है। कुपोषण, बीमारियाँ और चिकित्सा सुविधाओं की कमी के कारण यहाँ की शिशु और मातृ मृत्यु दर अत्यधिक उच्च है। मलेरिया और टीबी जैसी बीमारियाँ भी व्यापक रूप से फैली हुई हैं, लेकिन जागृकता और चिकित्सा सुविधाओं के अभाव में स्थिति और बिगड़ जाती है। सरकार द्वारा राष्ट्रीय स्वास्थ्य मिशन के तहत कुछ कदम उठाए गए हैं, परंतु उनका असर सीमित ही रहा है।

आदिवासी इलाकों में बुनियादी ढाँचे की कमी, जैसे सड़कों, बिजली, और सिंचाई सुविधाओं की अनुपस्थिति, उनकी आर्थिक प्रगति में बाधक बनती है। रमणिका गुप्ता ने आदिवासियों की आर्थिक स्थिति पर टिप्पणी करते हुए लिखा है, "जंगल माफिया कीमती पेड़ उनसे सस्ते दामों पर खरीदकर ऊँचे दामों पर बेचता है और करोड़पति बन जाता है। पेड़ काटने के आरोप में आदिवासी दंड भरता है या जेल जाता है। सरकार की ऐसी नीतियों के कारण आदिवासी जमीन के मालिक बनने के बजाय पहले मजदूर बने फिर बंधुआ मजदूर।"³ इसके अतिरिक्त सांस्कृतिक पहचान को लेकर एक आंतरिक हीनता का भाव भी देखने को मिलता है। बाहरी लोगों द्वारा नीची दृष्टि से देखे जाने के कारण समुदाय के युवक-युवतियाँ अपनी जातीय पहचान और परंपराओं से कटते जा रहे हैं।

आदिवासी विकास योजनाओं के अंतर्गत सरकार ने जनजातीय क्षेत्रों में शिक्षा, स्वास्थ्य और बुनियादी ढाँचे के विकास के लिए कदम उठाए हैं। जनजातीय क्षेत्र विकास योजना (TSP) के तहत स्कूल, अस्पताल, और सड़कों का निर्माण किया जा रहा है, जिससे उनके जीवन स्तर में सुधार हो सके। इसके साथ ही, वनाधिकार अधिनियम 2006 ने समुदायों को उनके पारंपरिक जंगलों और भूमि पर अधिकार प्रदान किए हैं। यह कानून न केवल उनके जीवनशैली की रक्षा करता है, बल्कि उनके पारंपरिक ज्ञान

को भी सुरक्षित रखने का प्रयास करता है, यद्यपि इसके क्रियान्वयन में अब भी कई चुनौतियाँ बनी हुई हैं।

रोजगार के अवसर बढ़ाने के लिए भी विभिन्न कौशल विकास कार्यक्रम संचालित किए जा रहे हैं, जिनमें प्रधानमंत्री कौशल विकास योजना (PMKVY) प्रमुख है। इसके तहत युवाओं को उद्योगों में प्रशिक्षित किया जा रहा है, ताकि वे आत्मनिर्भर बन सकें। इसके अतिरिक्त स्वयं-सहायता समूह (SHG) के माध्यम से छोटे और कुटीर उद्योगों को बढ़ावा दिया जा रहा है, जिससे इन समुदायों का आर्थिक और सामाजिक सशक्तिकरण संभव हो सके।

प्राकृतिक संसाधनों पर निर्भरता इन समुदायों की जीवनशैली का आधार है। खेती, वनोत्पाद संग्रहण, शिकार, और हस्तशिल्प उनके आत्मनिर्भरता के प्रमुख साधन हैं। झूम खेती और कुटीर उद्योग जैसी गतिविधियाँ उनकी जीवनधारा को संचालित करती हैं, जिससे बाहरी दुनिया पर निर्भरता कम होती है। गंगा सहाय मीणा के शब्दों में "आदिवासी साहित्य अस्मिता की खोज, विभिन्न प्रकार के शोषण के उद्घाटन, और अस्तित्व के संकटों तथा उनके खिलाफ चल रहे प्रतिरोध का दस्तावेज है। यह परिवर्तनकारी चेतना का रचनात्मक हस्तक्षेप है, जो देश के मूल निवासियों के प्रति भेदभाव का विरोध करता है और उनके जल, जंगल, और जमीन की रक्षा में उनके 'आत्मनिर्णय' के अधिकार के समर्थन में खड़ा होता है।"⁴

सामूहिक निर्णय प्रक्रिया सामाजिक संरचना का अभिन्न अंग है। इसमें सभी सदस्यों की सम्मिलित राय ली जाती है, जिससे समाज में एकजुटता और आपसी सहयोग की भावना मजबूत होती है। यह सामूहिक उत्तरदायित्व के सिद्धांत को भी सशक्त बनाती है, जिससे हर सामाजिक और आर्थिक कार्य सामूहिक प्रयास से संपन्न होता है।

सांस्कृतिक धरोहर में नृत्य और संगीत महत्वपूर्ण स्थान रखते हैं। ये विशेष अवसरों पर प्रस्तुत होते हैं और समाज के इतिहास, धार्मिक आस्थाओं, और सामाजिक जीवन की झलक देते हैं। करमा, सरना, और गोंडी नृत्य इस संस्कृति के प्रमुख प्रतीक हैं, जो लोककथाओं और गीतों के माध्यम से पीढ़ी दर पीढ़ी जीवित रहते हैं। लोककला इन समुदायों की सांस्कृतिक पहचान का अभिन्न तत्व है।

चित्रकला, शिल्पकला, और हस्तशिल्प उनके धार्मिक विश्वासों और जीवनशैली का परिचायक होते हैं। चारली चित्रकला और गोंडी कला वैश्विक स्तर पर प्रसिद्ध हैं और इनकी कलाएँ पारंपरिक जीवन के विभिन्न पहलुओं को उजागर करती हैं।

परिवार की अवधारणा इस समुदाय में अत्यंत महत्वपूर्ण होती है। परिवार के हर सदस्य की भूमिका न केवल सामाजिक व्यवस्था को स्थिर बनाती है, बल्कि आर्थिक रूप से भी एकजुटता बनाए रखती है। विवाह के बाद परिवारों का संयुक्त रहना और बुजुर्गों का सम्मान करना उनकी सांस्कृतिक धरोहर को मजबूत बनाता है। महिलाओं का सामाजिक और आर्थिक योगदान भी अत्यंत महत्वपूर्ण होता है। पारिवारिक जीवन में उनकी भूमिका के साथ-साथ वे कृषि, वनोत्पाद संग्रह, और हस्तशिल्प कार्यों में भी सक्रिय रहती हैं। कुछ समुदायों में मातृसत्तात्मक संरचना विद्यमान है, जिसमें संपत्ति और सामाजिक अधिकार महिलाओं को प्राप्त होते हैं। यह उन्हें निर्णय लेने की प्रक्रिया में महत्वपूर्ण भूमिका देती है।

विवाह की प्रथाएँ इन समुदायों में गहरी परंपराओं पर आधारित होती हैं। विवाह समारोहों में सामूहिक नृत्य और गीतों का आयोजन सामाजिक और सांस्कृतिक जीवन को जीवंत बनाता है। इस दौरान बहुपत्नी प्रथा और सामूहिक विवाह जैसी विशेषताएँ भी देखने को मिलती हैं, जहाँ बुजुर्गों और समुदाय के नेताओं की महत्वपूर्ण भूमिका संबंधों को स्थिर और मजबूत बनाने में होती है।

मुख्यधारा के समाज से भिन्न, यहाँ महिलाओं को अधिक स्वतंत्रता प्राप्त होती है। वे अपने वर का चयन कर सकती हैं, बिना किसी दंड या दोष के। घोटुल प्रथा में युवा लड़के-लड़कियाँ एक साथ रहते हैं, जहाँ उन्हें विभिन्न ज्ञान और प्रशिक्षण दिया जाता है। इस तरह की स्वतंत्रता के कारण ये महिलाएँ संवाद करती हैं और सहमति से विवाह कर सकती हैं। विवाह इस समाज में एक स्थायी बंधन नहीं होता; यदि संबंध में हिंसा होती है, तो महिलाएँ छोड़ने का अधिकार रखती हैं। “भारतीय संस्कृति के बिल्कुल विपरीत, इन समाजों में महिलाओं को अपने वर का चयन करने की इजाजत होती है; इसके लिए न तो उन्हें दंडित किया जाता है और न ही दोषी ठहराया जाता है। यहाँ घोटुल प्रथा थी, जहाँ युवा लड़के-लड़कियों को एक साथ रखकर विभिन्न ज्ञान

प्रदान किया जाता था। यह उनका प्रशिक्षण स्थल होता था। इसलिए, अन्य भारतीय महिलाओं के विपरीत, ये महिलाएँ लड़कों को देखकर न तो मोम की तरह पिघलती हैं और न ही बर्फ की तरह पानी-पानी होती हैं; वे उनसे संवाद करती हैं, परखती हैं, और यदि किसी के साथ जीवन बिताने की संभावना दिखे, तो सहमति से विवाह भी कर लेती हैं।”⁵

हालांकि, शिक्षा का अभाव एक गंभीर समस्या बनी हुई है। अशिक्षा के चलते ये समुदाय मुख्यधारा से कटे रहते हैं, जिससे बेहतर रोजगार के अवसर नहीं मिल पाते और उनकी सामाजिक-आर्थिक स्थिति कमजोर बनी रहती है। आर्थिक संसाधनों की कमी के कारण वे अक्सर ऋण के जाल में फँस जाते हैं, जिससे बाहरी शोषण और महाजनी प्रथाएँ और विकट हो जाती हैं। बिचौलियों द्वारा कम मजदूरी पर काम करने के लिए मजबूर होना भी एक गंभीर मुद्दा है।

बाहरी लोगों द्वारा भूमि पर कब्जा और विस्थापन एक और गंभीर समस्या है। उद्योगों, खनन कंपनियों, और बड़े किसानों द्वारा भूमि हड़पी जाती है, जिससे लोगों को अपने पैतृक स्थानों से विस्थापित होना पड़ता है। यह प्रक्रिया उनकी आजीविका के लिए संकट पैदा करती है, क्योंकि उनका जीवन पूरी तरह से प्रकृति और भूमि पर निर्भर होता है। भूमि का अधिग्रहण उनकी आर्थिक स्वतंत्रता को समाप्त कर देता है, जिससे वे असुरक्षा के जाल में फँस जाते हैं।

धर्मांतरण भी इन समुदायों के लिए एक प्रमुख समस्या बन चुका है। विभिन्न धार्मिक संगठन और मिशनरियाँ यहाँ सक्रिय हैं, जो धर्मांतरण के लिए प्रेरित करते हैं। इससे पारंपरिक धार्मिक आस्थाएँ और सांस्कृतिक पहचान को नुकसान पहुँचता है। धर्मांतरण के बाद, कई बार लोग अपने समुदाय से भी अलग-थलग कर दिए जाते हैं, जिससे उनकी सामाजिक स्थिति और कमजोर होती है।

गोंडवाना की वीरांगना रानी दुर्गावती से लेकर बिरसा मुंडा जैसे नायकों तक, हर एक ने साहस और संघर्ष के प्रतीक बनकर अपने समुदाय की आज़ादी और अस्मिता के लिए प्रेरणा प्रदान की है। उनके संघर्षों से यह स्पष्ट होता है कि अपने अधिकारों और पहचान की रक्षा के लिए लगातार प्रयास आवश्यक हैं।

आदिवासी उन्नयन एक महत्वपूर्ण प्रक्रिया है, जिसका

उद्देश्य समुदायों को शिक्षा, स्वास्थ्य, और आर्थिक संसाधनों के क्षेत्र में सशक्त बनाना है। सरकार और विभिन्न गैर-सरकारी संगठनों द्वारा चलाए जा रहे कार्यक्रम, जैसे प्रधानमंत्री कौशल विकास योजना और जनजातीय क्षेत्र विकास योजना, के माध्यम से इन समुदायों को नई तकनीकों और कौशलों से लैस किया जा रहा है। शिक्षा पर विशेष ध्यान देकर युवा पीढ़ी को बेहतर अवसरों का लाभ उठाने के लिए तैयार किया जा रहा है। इसके साथ ही, स्वास्थ्य सेवाओं का विस्तार और सामुदायिक स्वास्थ्य केंद्रों की स्थापना भी इस दिशा में महत्वपूर्ण कदम हैं।

आर्थिक सशक्तिकरण के लिए स्वयं-सहायता समूहों (SHG) का गठन किया जा रहा है, जो महिलाओं को आय के स्रोत विकसित करने में मदद कर रहे हैं। हालाँकि, इस उन्नयन प्रक्रिया में कई चुनौतियाँ सामने आती हैं, जैसे भूमि अधिकारों का संरक्षण, संसाधनों का न्यायसंगत वितरण, और सांस्कृतिक पहचान की रक्षा। इन मुद्दों को ध्यान में रखते हुए, यह आवश्यक है कि योजनाओं का प्रभावी क्रियान्वयन किया जाए और समुदायों की सक्रिय भागीदारी सुनिश्चित की जाए। इस प्रकार, उन्नयन न केवल जीवन स्तर को सुधारने में सहायक है, बल्कि यह समग्र समाज के विकास में भी योगदान देता है।

इन सभी प्रयासों के बावजूद, उन्नयन की प्रक्रिया में कई चुनौतियाँ बनी हुई हैं, जैसे भूमि अधिकारों का हनन, आर्थिक शोषण, और सांस्कृतिक उपेक्षा। इन समस्याओं का समाधान किए बिना स्थायी विकास की दिशा में प्रगति कठिन है। इसलिए, विकास कार्यक्रमों का संचालन समुदायों के साथ मिलकर और उनकी आवाज़ को महत्व देते हुए आवश्यक है। एक समावेशी और न्यायसंगत समाज के निर्माण के लिए यह प्रक्रिया एक महत्वपूर्ण कदम है।

निष्कर्ष : जनजातीय जीवन भारतीय समाज की सांस्कृतिक विविधता का अभिन्न अंग है, जो सामूहिकता, प्रकृति और पारंपरिक रीतियों पर आधारित है। हालाँकि, शिक्षा का अभाव, आर्थिक पिछड़ापन, भूमि हड़पना और धर्मांतरण जैसी समस्याएँ उनके अस्तित्व को प्रभावित कर रही हैं। फिर भी, ये समाज अपनी सांस्कृतिक पहचान और स्वाभिमान की रक्षा के लिए निरंतर संघर्षरत हैं, और बिरसा मुंडा, टंट्या भील, तथा रानी दुर्गावती जैसे महान नायकों के आदर्श आज भी उनके प्रेरणा स्रोत बने हुए हैं।

इस समाज का विकास शिक्षा, आर्थिक सशक्तिकरण, और सांस्कृतिक संरक्षण के माध्यम से संभव है, ताकि वे अपनी धरोहर को संजोते हुए आधुनिक समाज में समृद्ध और आत्मनिर्भर जीवन जी सकें। भारतीय संस्कृति और इतिहास का यह अविभाज्य हिस्सा अपनी पारंपरिक जीवनशैली, सांस्कृतिक संपदा, और पर्यावरण संरक्षण के प्रति सजगता के लिए जाना जाता है। हालाँकि, आधुनिकता की चुनौतियाँ जैसे विस्थापन, भूमि अधिकार, स्वास्थ्य सेवाओं की कमी, और आर्थिक पिछड़ापन उनके समक्ष हैं। सरकार द्वारा उनके विकास और सांस्कृतिक पहचान को बनाए रखने के लिए कई योजनाएँ और नीतियाँ प्रस्तावित की गई हैं, किंतु उनका प्रभावी क्रियान्वयन और समुदायों की भागीदारी इस दिशा में आवश्यक कदम हैं।

मुख्यधारा में लाने के लिए उनके अधिकारों की सुरक्षा, शिक्षा का प्रसार, और आर्थिक सशक्तिकरण अनिवार्य है। केवल इसी तरह हम एक संतुलित और समृद्ध समाज की कल्पना कर सकते हैं, जिसमें ये समुदाय अपनी विशिष्ट पहचान के साथ प्रगति कर सकें।

संदर्भ ग्रंथ सूची

1. रमणिका गुप्ता : आदिवासी विकास से विस्थापन, राधाकृष्णन प्रकाशन, नई दिल्ली, 2018, पृ. 12
2. सं. वंदना टेटे, आदिवासी दर्शन और साहित्य, संस्करण 2016, पृ.सं. 34
3. रमणिका गुप्ता; (सं.) दीपक कुमार, देवेन्द्र चौबे; : आदिवासी अस्मिता के प्रश्न, पृ. 357-358
4. आदिवासी साहित्य विमर्श - गंगा सहाय मीणा (सं.), अनामिका प्रकाशन, दिल्ली, पृष्ठ-9
5. आदिवासी कविताओं में चित्रित विद्रोही स्वर: गणेश डी.के.

सह आचार्य, हिंदी विभाग
सरकारी बी जे एम कॉलेज
चवरा , कोल्लम

केरलप्योति
दिसंबर 2024

निष्ठा का सवाल उठाए अरसा गुज़र गया!

डॉ अनुज कुमार



प्रसिद्ध आलोचक-चिन्तक, पत्रकार कैवल भारती जी के बगैर दलित हिन्दी साहित्य की कल्पना अधूरी है। उनका पहला और एकमात्र काव्य-संग्रह तब तुम्हारी निष्ठा क्या होती? 1996 में बोधिसत्व प्रकाशन से छपकर हमारे सामने आया। जो भी उनकी कविता पढ़ेगा वह कैवल जी की पक्षधरता को साफ समझ जाएगा। इस बीच बहुत सारा पानी बह चुका है। कई अलग-अलग कारणों से समाज तेज़ी से तब्दील हुआ है। अगर समाज, साहित्य में परिलक्षित होता है, तो हम कह सकते हैं कि धीरे-धीरे हम एक ऐसे समाज में तब्दील होते चले गए हैं जहाँ पॉपुलिज़्म, राष्ट्रवाद, अधिनायकवाद और बहुसंख्यकवाद को खास तवज्जो दी जाने लगी है। कुछ और बिन्दु जोड़ दें तो सत्ता द्वारा कॉर्पोरेट और उच्च जातियों के पक्ष को लाभ पहुँचाती नीतियों में इजाफा हुआ है। मौजूदा हुकूमत तो इस दावे का खंडन करती है कि वह केवल हिंदू और चंद अमीरों की समर्थक है। बल्कि हकीकत किसी दूसरे ढंग से हमारे सामने मौजूद है। वर्तमान व्यवस्था में सिर्फ अल्पसंख्यक मुसलमानों और ईसाइयों को ही अलग नहीं किया जा रहा है। जाति-आधारित अत्याचारों की बढ़ती आवृत्ति दर्शाती है कि किस प्रकार सत्ता ब्राह्मणवाद को बढ़ावा देती है। यह उन हिंदुओं की कीमत पर होता है जो पारंपरिक जाति पदानुक्रम के अनुसार कुलीन जातियों से संबंधित नहीं हैं। दूसरे शब्दों में, भारत में दलितों, महिलाओं और अन्य लोगों पर ब्राह्मणवादी नीतियों और रणनीतियों के प्रभाव को लेकर मुख्यधारा में बहुत काम विवेचना की गई है। पहले कानून मंत्री बी. आर. अंबेडकर की बात सच होती नज़र आ रही है। उन्होंने लिखा था, “अगर हिंदू राज हकीकत बन जाता है, तो इसमें कोई संदेह नहीं, यह इस देश के लिए सबसे बड़ी आपदा होगी।” वर्तमान परिदृश्य को देखते हुए तो केवल इतना ही कहा जा सकता है कि वही हो रहा जिसको लेकर बाबा साहब अंबेडकर ने आशंका जताई थी। अल्पसंख्यक विरोधी बयानबाज़ी का सामान्यीकरण, देश के आंतरिक और साथ ही बाहरी दुश्मनों द्वारा उत्पन्न आसन्न खतरे के नियमित और झूठे दावे। पक्षपातपूर्ण तथ्यों का भोंडा प्रदर्शन और एक उग्र

सांस्कृतिक राष्ट्रवाद हम सब अनुभव करने को बाध्य हैं। गाय की राजनीति का आलम यह कि इसका अधिकतम नुकसान दलितों और मुसलमानों को ही उठाना पड़ा है। सामाजिक, सांस्कृतिक अपमान के अलावा आर्थिक नुकसान भी उन्हें इस बीच अधिक झेलना पड़ा है। मवेशियों की बिक्री और खरीद के आरोपों पर हिंसा ने ग्रामीण अर्थव्यवस्था को अस्त-व्यस्त कर दिया है, जिससे आम तौर पर किसान और विशेष रूप से दलित प्रभावित हुए हैं। ऐसा इसलिए है, क्योंकि कई दलित समूह गाय की खाल के प्रसंस्करण से संबंधित व्यवसायों में संलग्न हैं, जो बदले में उपभोक्ता और औद्योगिक वस्तुओं के निर्माण में जाता है। इसके अतिरिक्त, इस ‘भावनात्मक’ मुद्दे पर लिंग के कई शिकार दलित थे। उना प्रकरण, जिसमें सात दलित पुरुषों को निर्वस्त्र कर पीटा गया, ने समुदाय में एक भयावह संदेश भेजा। उच्च वर्ग का खुला सामाजिक प्रभुत्व, कुछ एक के लिए तीव्र आर्थिक विकास के साथ-साथ गरीबी के सूचकांक पर लगातार गिरना, स्त्री-द्वेष और उस पर नियंत्रण एवं इतिहास के साथ अप्रत्याशित रूप से छेड़छाड़ जैसी कुछ और स्थितियाँ हैं जो हम देख पा रहे हैं। कहना चाहिए चुपचाप ऐसी स्थिति में जीने को अभिशप्त और लाचार हैं। ऐसे में लगातार पतनोन्मुख समाज का चित्रांकन साहित्य में कितना हो रहा है? यह हम सब को देखने की आवश्यकता है। कहीं ऐसा तो नहीं कि वह धूमिल के ‘हाथ की मुट्ठी के तने होने और काँख भी ढके रहने’ समान हुआ है। इधर मंच (लिटफेस्ट) और पुरस्कार का भी एक नया शगल चल निकला है। मंच और पुरस्कार, साहित्यकार का सच नहीं होने चाहिए। किन्तु यह तभी हो सकता है जब साहित्य, रचनाकार के लिए कहीं पहुँचने भर का टूल न हो।

ऐसे में कैवल भारती जी की कविताएँ कहाँ खड़ी होती हैं? यँ कहें कि कैवल भारती जी का व्यक्तित्व खुद कैसा है। हम देखते हैं कि वे अपने हृदय के उद्गार व्यक्त करने में कोताही नहीं बरतते। विषम से विषम परिस्थितियों में वे मुखर और स्पष्टवादी रहे हैं। उनका चिंतक रूप,

प्रखरता और स्पष्टता के साथ हमारे समक्ष उनके लेखों और टिप्पणियों के ज़रिए प्रस्तुत होता रहा है। उनके द्वारा हिंदी की विविध साहित्यिक विधाओं में लेखन उनके गहन अध्ययता और आलोचक रूप से हमारा परिचय कराता है।

उनकी कविताओं से गुज़रते हुए उनकी निष्ठा पर कोई सवाल खड़े नहीं किए जा सकते- मैं दलित चेतना का कवि हूँ/है रचना कर्म मेरा विद्रोह/दलितों की पीड़ा का चित्रण/समता, समानता है प्रतिमान (पृ.15) बल्कि हैरत की जा सकती है कि आखिर क्या वजुहात थे जिसने उन्हें एक काव्य-संग्रह तक ही सीमित कर दिया।

कैवल भारती की कविताओं पर सरसरी नज़र दौड़ाने से यही पता चलता है कि उनके अंदर समता को लेकर बेचैनी है। वे महीन से महीन विभाजन और भेद भरे व्यवहारों-नीतियों की शिनाख़ूत बहुत आसानी से कर लेते हैं। जिसे दरअसल 'आसानी' कहा जा रहा है, वह 'यातना' है। यातना, जो असहनीय है। किन्तु एक खूबसूरत दुनिया की चाह कवि की तड़प है। वह जान रहा है कि रेखांकित करने योग्य बदलाव नहीं आये हैं, दलित को आज भी वह समानता प्राप्त नहीं हुई, जिसका वह हकदार है। सवाल जैसे सदियों से बने हुए थे आज भी बरकरार हैं। केवल शकल-सूरत में थोड़ा हेर-फेर हुआ है। धर्म, पूंजी और राज्य का गठजोड़ उतरोत्तर मज़बूत हुआ है। तमाम योग्यताओं और मेधा के बावजूद दलित अपने ही देश में दोगम दर्जे का प्राणी बनकर जीवनयापन करने को वह बाध्य है। सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक, धार्मिक और सबसे महत्वपूर्ण सांस्कृतिक समता आज भी नहीं मिली है।

कैवल भारती के चौकस इतिहासबोध का हवाल हमें उनकी कई कविताओं में देखने को मिलता है। यहाँ 'पंद्रह अगस्त' और 'शंबूक' कविता के मार्फत हम उनके इतिहासबोध को देखने का प्रयास करेंगे। जिस तरह गांधी के दर्शन को लेकर सुशीला टाकभौरे सवाल करती हैं, उसी तरह 'पंद्रह अगस्त' कविता में भारती जी बेलाग सवाल करते हैं- तुम बोलते हो महात्मा गांधी की जय/पंद्रह अगस्त पर/ और भूल जाते हो डॉ. अंबेडकर को जिन्होंने स्वाधीनता का मार्ग प्रशस्त किया था। (पृ.34) इसी कविता में आगे वे कई और सवाल करते हुए दिखाते हैं। मसलन

खुदीराम, सुखदेव, आज़ाद और भगत सिंह को हम विद्रोही मानते हैं क्योंकि उन्होंने अंग्रेज़ों के खिलाफ लड़ाई की थी, पर उन दलितों का क्या जो हिंदुओं के अत्याचारों के शिकार हुए? मनु और उसके द्वारा बनाए गए काले कानूनों का क्या? जिन्होंने गुलाम बनाये रखने में कोई कसर नहीं छोड़ता। (जिसका नतीजा यह था कि अगस्त 9, 2018 को संविधान की प्रति जलाई गई) झलकारी बाई का क्या जिसे लक्ष्मीबाई के लिए विस्मृत कर दिया गया? चौरी-चौरा के भुला दिए गए शहीदों का क्या? जलियाँवाला बाग के शहीदों के साथ-साथ वीर उधम सिंह का जिक्र क्यों नहीं? जिसने डायर को खत्म करने के लिए लंबा इंतज़ार किया पर अपने लक्ष्य से टस-से-मस नहीं हुए। ग़दर का मंत्र देने वाले मातादीन भंगी को मंगल पांडे के साथ क्यों याद नहीं किया जाता? कविता के अंत में कैवल जी ललकारते हुए हमें वास्तविकता से रूबरू कराते हैं- "यदि जीवित रखना है लोकतंत्र को/देश की राजनीतिक स्वतंत्रता को/ तो नष्ट कर दो जाति के दंभ को/वर्ण की सोच को/बनो समता के पक्षधर/उठो जाति-वर्ग विहीन समाज के निर्माण के लिये/एक और स्वतंत्रता संग्राम लड़ने के लिये।" (पृ.35)

अब 'शंबूक' कविता पर गौर करें। अपने आस-पास का हमारा आज का अनुभव यही कहता है कि 'सत्य' जैसी की कोई अवधारणा नहीं बची है। आज का सत्य एक उत्पाद है। कभी इसे ही हरमन और चोम्स्की ने मैनुफैक्चरिंग कॉन्सेंट कहा था। आप की सहमति किसी बात पर ली जा सकती है, या इसे इस तरह भी लिखा जा सकता है कि आपको जबरन सहमत होने को बाध्य किया जा सकता है। तिस पर आपको ज़बरदस्ती किसी बात पर विश्वास दिलाया गया है, इसकी भनक भी शायद ही आपको लगे। फिर एक और कथन जो बेहद प्रचलित है कि "इतिहास विजेताओं द्वारा लिखा जाता है। अब शंबूक कविता की कुछ पंक्तियाँ देख लेते हैं- "शंबूक/हम जानते हैं तुम इतिहास पुस्तक नहीं हो/वरना कोई लिख देता/तुम्हें भी पूर्व जन्म का ब्राह्मण/स्वर्ग की कामना से/राम के हाथों मृत्यु का याचक" (पृ.47) हिन्दू या सनातन संस्कृति से जाहिर है जो कोई भी लड़-झगड़ के, अपना प्रतिरोध दर्ज कर जब भी इतिहास में किसी तरह दर्ज हुआ है उसके साथ किंवदंतियाँ जोड़ दी गईं। बुद्ध, रैदास, कबीर सभी इसके उदाहरण हैं। काव्य-

संग्रह में केवल भारती द्वारा दिए निवेदन का एक अंश द्रष्टव्य है-“मध्य युग के दलित कवियों-कबीर और रैदास को भी हिन्दी साहित्य में तभी स्थान मिला था, जब उन्होंने अपना समाज तैयार किया था, अपना पंथ बनाया था और अपने लाखों अनुयायियों को पैदा किए थे। उनको अस्वीकार करना आसान नहीं था। यह ब्राह्मणों की मजबूरी थी, जो उन्होंने उन्हें स्वीकार किया। पर विचारणीय बात यह है कि ब्राह्मणों ने कबीर और रैदास आदि दलित संतों को विकृत करके स्वीकार किया है। उनके काव्य को समग्र रूप में नहीं, अपितु उसके उतने ही अंश को पाठ्यक्रमों में रखा है, जितने से ब्राह्मणवाद का दुर्ग सुरक्षित रहता है।” इसे आप ‘ऐसीमिलेशन’ भी कह सकते हैं। वर्चस्वशाली संस्कृति अपने अधीनस्थ संस्कृति के साथ ऐसा ही करती है। केवल भारती ऐसे किसी भी नेरेटिव को नकारते हुए कहते हैं- “शंबूक(हम जानते हैं)/तुम्हारी तपस्या से/ब्राह्मण का बालक नहीं मरा था/जैसा कि वाल्मीकि ने लिखा है/मरा था ब्राह्मणवाद/मरा था उसका भवितव्य।”(पृ.47)

केवल भारती, उन दलित रचनाकारों में रहे हैं जिन्होंने हमेशा स्वानुभूति पर बल दिया। कहा ही गया है, फटी एड़ियों का दर्द वही जानेगा जिसकी खुद की एड़ियाँ फटी हुई होंगी। आयातित अनुभव कभी वह प्रामाणिकता नहीं दर्ज कर पाएंगे जिसके ज़रिए किसी रचना को गांभीर्य और औदात्य प्राप्त हो। खुद कवि कहते हैं कि- दलित कविता जाति का यथार्थ प्रस्तुत करती है। यह यथार्थ निश्चित रूप से कटु है। इस कटु यथार्थ को स्वर्ण कैसे महसूस कर सकते हैं, जबकि इसे उन्होंने जिया है नहीं है। (निवेदन से, पृ.18) स्वानुभूति के महत्व को हम दलित आत्मकथाओं के ज़रिए समझ सकते हैं। स्वानुभूति को ठीक-ठीक समझने के लिए मुझे हमेशा मलखान सिंह की कविता एक पूरी उम्र याद आती है- यकीन मानिए/इस आदमखोर गाँव में/मुझे डर लगता है/बहुत डर लगता है/लगता है कि अभी बस अभी/ठकुरासी में/डू चीखेगी/मैं अधशौच ही खेत से उठ आऊँगा/ कि अभी बस अभी/हवेली घुड़केगी/मैं बेगार में पकड़ा जाऊँगा। “कल्पना के अतिरेक के बावजूद किसी प्रिविलेज्ड रचनाकार के लिए संभव नहीं कि वह अधशौच से उठने की सोच भी सके। इस दंश को वही व्यक्त कर सकता है

जिसने फर्स्ट हैंड उस भय या आतंक का अनुभव किया हो। जहाँ मनुष्य के जीवन की गरिमा ढेला बराबर भी नहीं हो। एक ऐसी ही कविता केवल भारती जी की भी है। नाम है ‘जब तक व्यवस्था जीवित है’। कविता में राख ही जानती है जलने का दर्द चरितार्थ हुआ है- जब तक व्यवस्था जीवित है/और तुम्हें उसका आश्रय प्राप्त है/तभी तक तुम लिखोगे/राम को राष्ट्र का गौरव/पौराणिक कथाओं में ढूँढोगे मानवतावाद/वेदों में बताओगे/सही सलामत/सहज और ज़मीन से जुड़े।/तुम क्या जानो/ जाति की व्यथा/शोषण की पीड़ा/अपमान की यंत्रणा/दासता की वेदना/क्योंकि तुम्हारे बाप ने नहीं काढ़ी/मरे जानवरों की खाल/तुम्हारी माँ ने नहीं ढोया मैला/तुम्हारे बच्चों ने/घर-घर जूठन की जुहार नहीं लगाई/ तुम्हें कीड़े से बजबजाते गंदे नालों के किनारे/अंधेरे घरों में रहना नहीं पड़ा। (पृ.51)

संस्कृति मूलतः अपनी आंतरिक संरचना में वर्चस्ववादी और बहुसंख्यकवादी होती है। यानी एक समान संस्कृति हेतु कुछ वर्चस्वशाली संस्कृतियाँ अपने से कमज़ोर संस्कृतियों पर या तो हावी हो जाती हैं या थोड़े फेर-बदल के साथ शक्तिहीन संस्कृतियों को अपने अंदर समाहित कर लेती हैं। ग्राम्शी इसे ही ‘हेजेमनी’ यानी आधिपत्य की संज्ञा देते हैं। वर्चस्व को बरकरार रखने में भाषा भी एक टूल का काम करता है। चूँकि भाषा का संस्कार हमें बचपन से ही मिलना शुरू होता है, ऐसे में भाषा के अभिजात्यवादी खोल से निकलना बेहद मुश्किल होता है। यह विचित्र संयोग है कि भाषा ही आपके भावों और विचारों को शकल देने का काम करती है और भाषा ही कभी-कभी आपकी अभिव्यक्ति को बाधित कर सकती है। केवल भारती कुछ इसी तरह के उद्गार तुम्हें आज़ाद कर रहा हूँ कविता में करते हैं- “सदियों के अंतराल के बाद/समझ में आया/शब्द कितने बड़े शस्त्र होते हैं/व्यूह को सुरक्षित रखते हैं/तुमसे मिली अनुभूतियों से ही/जनमी है मेरी भाषा/इसलिये तुम्हारे सारे शब्द/मेरी वेदनाओं ने निगल लिए हैं/व्याकरण जला दिया है/जो विभाजित करता था मुझे और तुम्हें।”(पृ.51) कुछ इसी तरह की एक और कविता है रचो वे पारमिताएँ।

बहुत साधारण-सी लगने वाली प्रीत की रेखाएँ कविता, महत्त्वपूर्ण हो सकती हैं। बशर्ते हम उसे ताउम्र संघर्ष कर रहे किसी भी साधारण आदमी के साथ जोड़ कर

देखें। इस कविता को पढ़ते हुए बरबस ही फैज़ की मशहूर नज़्म मुझ से पहली सी मोहब्बत मिली महबूब न माँग की याद हो आती है। फैज़ कहते हैं कि और भी दुख हैं जमाने में मोहब्बत के सिवा/राहतें और भी हैं वस्ल की राहत के सिवा सवाल उठता है कि वे कौन से दुख हैं जो फैज़ साहब के लिए प्राइऑरटी हैं? शायद उन मज़लूमों का दुख जो वे केवल इसलिए सहने को बाध्य हैं क्योंकि उनके पास अपने हालातों को बदलने के मौके नहीं होते हैं। फिर आते हैं मुहब्बत की बात पर। शायद इश्क को फैज़ के यहाँ एक निजी मामले के रूप में देखा जा रहा है। सही भी है, लेकिन यह बात भी सोलह आने सही है कि निजी प्रेम ही है जो आपको वह बुलंदी देता है, ताकत देता है, हौसला देता है, जिससे कि आप जमाने भर से लड़-भिड़ सकें। यानी निजी प्रेम से होते हुए सामाजिक प्रेम की ओर मज़बूती से बढ़ा जा सकता है। अब इसके ठीक उलट 'प्रीत की रेखाएँ' कविता देखिए। कवि सब कुछ भूल गया है। चंदन सदृश महकता शरीर, मुस्कान जो मोतियों सी है, गुलाबी होंठ, यौवन की मादकता, रूप-देह-वासना सब कुछ। कुल मिलाकर एक युवा के अंदर जो वासना की चाह होती है, यौवन का जो भावोद्वेग होता है वह खत्म हो चुका है। सवाल उठता है, क्यों? क्योंकि कवि ऐसी पृष्ठभूमि से ही साबका नहीं रखता जहाँ पल दो पल थिर होकर, ठहर कर इश्क-विश्क के बारे में सोचा जा सके। उसका जीवन सतत संघर्षशील रहा है- हाँ मैं भूल गया हूँ/क्योंकि अदद सहज-सरल जीवन/मेरे पास नहीं था।/मेरे पास संतप्त जिजीविषाएँ थीं/अभाव-चक्र से उत्पन्न विद्वेषताएँ थीं/और मैं एक टुकड़ा सुख जीने के लिये भी/टुकड़े-टुकड़े हो रहा था। आगे वे लिखते हैं- "अब विडंबनाओं की धूप में/उसका यौवन/शिशिर की हवाओं में/बर्फ बन गयी उसकी आकांक्षाएँ/वासना नहीं जगती/प्रीत की रेखाएँ खींचती हैं।" (पृ.52) हम देख सकते हैं कि इस कविता के मार्फत दो बातें उभर कर आती हैं- पहला यह कि एक व्यक्ति जिसका संबंध अभावों से ही ताउम्र जुड़ा रहा हो, वह पहले अपने हालात सुधारने में ही लगा रहेगा। रोज़मर्रा की ज़रूरतों की जुगाड़ में, प्रेम और सहवास उसके लिए किसी लक्ष्मरी समान होंगे। भूख और उसका दुख ही उसके लिए प्राथमिकता होगी। 'निज का विकास' उसकी पहली शर्त होगी। दूसरा यह कि जिस प्रीत की रेखाओं की बात केवल

जी करते हैं वह अवसान की स्थिति में उपजा 'प्लैटोनिक लव' है। न कि वह रक्तका तेज प्रवाह जिसे हम अंग्रेजी में 'एड्रेनालाइन रश' कहते हैं। जहाँ प्रेम और दैहिक लालसा अपने चरम पर होते हैं। वह भला जीवन को सुगम करने में जूझ रहे व्यक्तिको कहाँ मयस्सर होती है! यह कविता हमें यह भी एहसास दिलाती है कि सब का जीवन एक-सा नहीं है। प्रेम और उत्कट चाह भी हालातों पर निर्भर करते हैं।

यह कहने में कोई संकोच नहीं कि केवल भारती की लगभग हर कविता से जब आप गुज़रेंगे तो शिद्दत से महसूस कर पाएंगे कि उनकी कविताएँ एक समानांतर नेरेटिव निर्मित करती हैं। मानो पाठकों को चुनौती दे रही हो कि यदि तुम्हारा वर्ग और जाति मुझ सा नहीं है तो हमारी चेतना और किसी विषय की ग्राह्य-क्षमता भी मुख्तलिफ होगी। क्या हूँ मैं? एक बहुत ही मार्मिक कविता है। विस्थापन की पीड़ा केवल उनकी नहीं होती जो अपना दुख दुनिया के सामने रख सकते हैं, बल्कि उनकी पीड़ा, उनका संघर्ष भी कहीं से कमतर नहीं होता जिनके पास दुनिया को अपनी तकलीफें बयान करने का न कोई साधन है, और न ही कूवत। लेकिन दुनियावी दस्तूर यह रहा है कि बहुसंख्यकवादियों का दुख, उनकी पीड़ा, उनके संघर्ष को ही सबसे बड़े दुख के रूप में साझा किया जाता रहा है और सहानुभूति बटोरी गई है। दुख, दुख है। सभी का एक समान है, न कम, न ज्यादा। इसे लेकर किसी भी प्रकार की राजनीति, अपराध समान है। लेकिन क्या विडंबना है कि संस्तरीकृत समाज में हर दुख को एक सा मानने का चलन नहीं है। कश्मीरी पंडितों के विस्थापन का हवाला देते हुए केवल भारती अपने विस्थापन को लेकर सवाल कर रहे हैं, गोया अपनी अस्मिता, अपनी वस्तुस्थिति को लेकर सवाल कर रहे हों!- "मैं, जो सदियों से अपनी पीड़ा को/अपने विस्थापित होने के अहसास को/अपने चारों ओर व्याप्त दहशत के साये को/यातनाओं के दंश को/अभिव्यक्ति दे रहा हूँ, आवाज़ लगा रहा हूँ/स्वतंत्रता, समता और बंधुत्व की। क्या मेरी पीड़ा पीड़ा नहीं है?/क्या मैं विस्थापित नहीं हूँ?/क्या हूँ मैं?/अराष्ट्रीय या अवांछनीय?"(पृ.63) कवि का 'मैं' हर उस दलित का प्रतिनिधित्व करता है जो धर्म के नाम पर होने वाले आतंकवाद का तो शिकार बनता ही है,

साथ ही साथ राज्य द्वारा प्रायोजित-पोषित आतंकवाद का भी शिकार होता है। ऐसे में थोड़ा-बहुत सम्मान से जीने की लालसा पाले उसका जीवन एक शहर से दूसरे शहर दर-बदर होने में ही खत्म हो जाता है। एक दलित का जीवन विस्थापित का जीवन है। शहरों की शक्लों-सूरत को चार-चाँद लगाने वालों को जब चाहे हुकूमत बेघर कर देती है।

कँवल भारती की एक अद्भुत कविता है 'पिंजरे के द्वार खोल देना'। दलित कवियों पर नैराश्य और नकारात्मकता के आरोप लगते हैं। ऐसे आरोपों को यह कविता खारिज करती है। यह कविता उस वास्तविकता की ओर हमारा रख करती है, जहाँ स्तब्ध और ठस समाज का नुकसान सभी झेलते हैं। वह भी झेलता है जो इन रूढ़ियों के कारण लाभ की स्थिति में है। इस कविता में कँवल भारती दिखाने की कोशिश करते हैं कि कैसे एक स्वर्ण समाज से आया व्यक्ति चाह कर भी संरचनावादी स्थितियों को नकार नहीं पाता। कभी मर्यादा के नाम पर वह वर्जनाओं को लांघ नहीं पाता, कभी परंपराओं के नाम पर वह न्याय-अन्याय को नज़रंदाज कर देता है, कभी अनास्था और पाप-पुण्य का भय उसे किसी स्थापित मान्यता को नकारने से रोक लेते हैं, और कभी पिंजरे में कैद पक्षी को आज़ाद करने की चाह को वह अपने भीतर दफन कर लेता है, क्योंकि घर का बुजुर्ग पिंजरे में कैद पक्षी को ही सम्मान और प्रतिष्ठा का मसला बताता है। लेकिन कवि है कि फिर भी एक आस पाले हुए है। यह कविता उस आस का प्रतिबिंबन करती है, जहाँ कोई व्यक्ति स्वयं के परिमार्जन में जीवन-पर्यंत लगा रहता है। व्यक्ति अगर चाहे तो खुद को लगातार चुनौतियाँ देते हुए बदल सकता है। कँवल जी उसी भावना को प्रश्रय देते हैं। भावना जो मनुष्यता के पक्ष में खड़े होने को ताउम्र जद्दोजहद करती है- 'इस शायद और तभी के बीच कोई भावना/बुलबुले की नियति जीती है।/ प्रतिरोधों से अविचलित/आस्था से अपराजित/कोई व्यक्ति चेतना/यदि जन्म ले तुम्हारे भीतर/तो तुम सिर्फ इतना करना/पिंजड़े का द्वार खोल देना।' (पृ.46)

कँवल भारती की आलोचना दृष्टि पर एक सरसरी नज़र डालने पर वे उस परंपरा के वाहक प्रतीत होते हैं जो श्रमण शक्ति पर विश्वास करता है। मनुष्य की गरिमा को महत्व देता है। उस पर अभिमान करता है। आजीवकों,

चार्वाकों, बुद्ध, नाथ, कबीर, रैदास, फुले, साहू जी महाराज, आंबेडकर, पेरियार, संत गाडगे, स्वामी अछूतानन्द उनके आदर्श हैं। आंबेडकर के प्रति उनमें कृतज्ञता का भाव सबसे अधिक है। इसी संग्रह की कई कविताओं में उनके इस बोध का परिचय हमें प्राप्त होता है, बल्कि पहली कविता ही बाबा आंबेडकर को समर्पित है- "चौदह अप्रैल/एक तारीख/सदियों के अंधकार की परतों को चीरकर उदित होने वाले/एक प्रकाश पुंज का दिन/जो लाया था एक सवेरा/दलित-प्रवंचितों के जीवन की काली निशा में।/ चौदह अप्रैल/एक पावन दिन/उस मुक्तिदाता के उदय का/ जिसने किया था मानव को मुक्त/संकीर्ण परिधियों से/दास्य प्रथाओं से" (पृ.19) बलिहारी मन भी बाबा आंबेडकर के कर्म और त्याग को लेकर रची गई कविता है, जिस कारण आंबेडकर कवि के मानस पर अंकित हैं- "डॉ. बाबासाहेब आंबेडकर/जिन्होंने जीवंत प्रतिमाओं में तराशा था/मेरे समाज को, जो पाषाण हो गया था।/बनकर चित्रकार/उनकी मानवीय अनुभूतियों को/समता, स्वतंत्रता और सम्मान के रंगों से/सजीव किया था राजनीति के कैनवास पर कविता की अंतिम पंक्तियाँ कँवल जी के अनन्य प्रेम को और अधिक स्पष्ट कर देती हैं- हे मेरे आधुनिक समाज के शिल्पकार/उसकी अनुभूतियों के चित्रकार/वेदना के संगीतकार/तुम पर बलिहारी है मन/शत-शत बार। बाबा को समर्पित उनकी एक और कविता है, जिसमें सदियों के समानता के संघर्ष को बढ़ाते हुए बाबा साहब आंबेडकर ने जो गरिमा और सम्मान से भरे जीवन हेतु लौ जलाई थी, वह आज भी जल रही है। मुक्ति संग्राम जारी है -"जब भी अहसास करता हूँ/तुम्हारे विचारों में मुखर होता है रचनात्मक विप्लव/जो समाता है रोम-रोम में/बाबा तुम मरे नहीं हो/ जीवित हो/हमारी चेतना में/हमारे संघर्ष में/जो मुक्तिसंग्राम लड़ा था तुमने/वह जारी रहेगा उस समय तक/जब तक कि हमारे मुरझाए पौधों के/ हिस्से का सूरज/उग नहीं जाता।"

1996 में प्रकाशित उनके कविता-संग्रह की एक-एक कविता आज के माहौल में इतनी मौजूं हो गई हैं कि हैरत होती है कि कोई अपने समय से इतना आगे कैसे देख पाता है। यही तो एक गंभीर चिंतनशील रचनाकार की पहचान होती है। वह देश काल का उल्लंघन करने का माद्दा

रखता है। बल्कि किसी रचनाकार और उसकी रचना की उत्तरजीविता ही इस बात पर निर्भर करती है कि वह समकालीन संदर्भों में कितना सटीक बैठता है। उनकी लगभग सारी कविताएँ चुनौतीपूर्ण दस्तावेज़ हैं, जो नीम की कड़वाहट लिए हैं और हलक से नीचे उतारने में तकलीफ होती है। लेकिन सभी जानते हैं कि अगर उतार लिए जाएँ तो सेहत के लिए अच्छा होता है। तीस साल के करीब-करीब हो गए इस काव्य-संग्रह को आए। इन तीन दशकों में बहुत कुछ बदल गया है। जिसकी तसदीक इस कविता संग्रह में भी है। लेकिन बहुत कुछ नहीं भी बदला है, एक उदाहरण पेश है- “धर्म के सिद्धांत/बना नहीं सके धार्मिक/मनुष्यता के आग्रह/नहीं बना सके मनुष्य।/राष्ट्र की अवधानाएं/पैदा कर गई अलगाव/वर्ण और जाति की व्यवस्थाओं ने/न स्वतंत्रता को स्वीकारा/न समता को/न बंधुता को/वे विकसित करते रहे ई।र को/मनुष्य को मारते रहे/वे खड़े करते रहे भगवानों के भवन/उजाड़ते रहे इंसानों की बस्तियाँ। धर्म, मनुष्यता और राष्ट्र/सिर्फ शब्द हैं, जो चिंतन में दिखाई पड़ते हैं, उनका अस्तित्व दूर तक भी नहीं है।” (पृ.61) क्या बदला है आखिर इन तीस सालों में थोड़ी बहुत आर्थिक स्थिति बदली है, वह भी तब जब दलित विस्थापित मजदूर बनने को बाध्य हैं। कोरोना के दौरान, इन्हीं मजदूरों की दिल दहला देने वाली अमानवीय स्थितियों ने को हम सभी जानते हैं। अलग से यह कहना ज़रूरी नहीं कि इन मजदूरों में अधिकतर दलित जातियों से ही सम्बन्ध रखते होंगे जिनके हिस्से अकसर बेगारी ही लिखी होती है। केवल भारती ने तब ही लिखा था- “तुम कहते हो यह देश सब का है।/पर, शिक्षा पर तुम्हारा कब्जा।/भूमि पर तुम्हारा एकाधिपत्य/उद्योगों पर तुम्हारा एकछत्र राज,/हमारा क्या? /तुम्हारी करें हरवाही/सिर पर ढोयें मैला/उठायें मारे जानवर/करें तुम्हारी बेगार/कैसे कहें यह धर्म हमारा/कि तुम हमारे हो।” (पृ.63) हाल ही में एक फिल्म आई थी ‘गुठली-लड्डू’। एक ऐसे बच्चे कि कहानी जिसे सिर्फ इसलिए बार-बार शिक्षा पाने से रोक दिया जाता था क्योंकि वह दलित जाति से साबिका रखता है। कोई कहने को आज भी कह सकता है कि अब वह जमाना नहीं रहा। पर ऐसा आज भी है, बस हम आँखे दूसरी तरफ कर लेने की आदत पाल चुके हैं। आप किसी भी राज्य के गाँव-जवार चले जाइए। संघर्षशील पृष्ठभूमि से

आने वाले आज भी संघर्ष ही कर रहे हैं। बच्चे पढ़ते नहीं। मजदूरी में इधर-उधर लगे रहते हैं। ऐसे गाँवों में कोई सरकारी विद्यालय हो तो कुछ शिक्षक आज भी आपको मिल जाएंगे जो जाति या धर्म के संबोधनों द्वारा मनोबल तोड़ने का एक मौका नहीं छोड़ते। हिकारत भरी नज़रों से सभी देखते हैं, किन्तु ऐसी स्थिति में होने के कारणों की पड़ताल करने से बिदकते हैं। ऐसा इसलिए कि धर्म और सांस्कृतिक वर्चस्व खत्म नहीं हुआ है- “जिसमें समर्थन हो कोटि मनुष्यों की नीचता का/आदेश हो उन्हें दास-कर्म करने का/निषेध हो पढ़ने और धन कमाने का/साफ कपड़ा पहिनने, सभ्यता से रहने का/उन धर्मशास्त्रों को तुम क्या कहोगे?” (पृ.44) यह सवाल पूछना ही बुरा लगता है। उन्हें, जिन्होंने सदियों से अपने प्रिविलेज को कभी एड्रेस करने कि कोशिश ही नहीं की, उलटे सवाल उठाने वालों पर ही जातिवादी होने के आरोप मढ़ दिए, यह धर्म, समाज, राजनीति और साहित्य हर जगह हुआ- “तुम्हें दिखाई दिए/राजनीति के खतरे/जब हमने गांधी को अपने कंधों पर ढोने से इनकार कर दिया/अब तुम्हें दिखाई दे रहे हैं/साहित्य में जाति के खतरे/जब हमने प्रेमचंद-निराला को अपने कंधों पर ढोने से इनकार कर दिया है।” (पृ.70) मान लीजिए कभी जातिवाद का आरोप सीधे-सीधे लगाने में असमर्थ रहे तो दलितों को ‘नक्सलवादी’ करार दिया गया। सिर्फ इसलिए कि दलितों ने मुसलसल अपने ऊपर हो रहे अत्याचारों के खिलाफ अपना प्रतिरोध दर्ज किया - “एक दिन उन्होंने/अत्याचारियों को घेर लिया/कुछ का गला रोंत दिया/कुछ को गोलियों से भून दिया/गजब हो गया/सरकार भी/अत्याचारी भी/एक स्वर में चीख उठे/कितने नक्सलवादी हो गए हैं/बिहार के दलित” (पृ.70) ओमप्रकाश वाल्मीकि की तरह केवल भारती ने भी कहा है, बस्स बहुत हो चुका। पीढ़ियों से जो शोषण की परंपरा चली आ रही है उसपर वे पूर्ण विराम लगाने की इच्छा रखते हैं- “पीढ़ी दर पीढ़ी।/अब यह हो नहीं सकता/कि तुम्हारे सारे गंदे काम हम करें/पीढ़ी दर पीढ़ी।/और हम हो कर बहिष्कृत जीते रहें/पीढ़ी दर पीढ़ी।/अब हम बनाएंगे राष्ट्र की मुख्यधारा। (पृ.66)

कँवल भारती ने हर उस व्यक्तित्व की आलोचना की है जिनके यहाँ विरोधाभास की झलक दिखाई देती है या उतरोत्तर जिनका चिंतन वर्ण-व्यवस्था को ही संबल प्रदान करता है। राम, गांधी, तुलसीदास, स्वामी विवेकानंद सभी उनकी काव्य-आलोचना की धार से नहीं बचते।

अंत में आइए उस कविता पर बात करते हैं जो एक पाठक के तौर पर मेरी प्रिय कविताओं में से एक है। कविता है तब तुम्हारी निष्ठा क्या होती। कविता-संग्रह का नाम भी यही है। जाहिर है कविता महत्त्वपूर्ण ही होगी। यह एक लंबी कविता है। कविता क्या है, सवाल की एक फेहरिस्त है! सवाल, सिचूएशन्स की शकल में रखे गए हैं। इन सवालों को पूछे हुए अरसा हो गया है लेकिन जवाब अब भी नहीं मिलते। बल्कि कहना चाहिए जवाब सभी जानते हैं, बस स्वीकार का डर है। 'दुर्ग द्वार पर दस्तक' कई बार दर्ज किया जा चुका है पर मानो द्वार बंद रहे यही कुछ वर्णों की कामना सदियों से रही है। वे उन स्थितियों से बावस्ता होना ही नहीं चाहते जिनमें यदि उन्हें रहने को विवश होना पड़े तो पल भर में ही लगे कि दम घुट जाएगा। एक बानगी देखिए- यदि स्मृतियों का यह विधान लागू हो जाता/ तुम ब्राह्मणों, ठाकुरों और वैश्यों पर/कि तुम नीच हो,/ श्मशान-भूमिवत हो/तुम्हारे आवास हों गांवों के बाहर/ तुम्हारे पेशे हों घृणित-/मरे जानवरों को उठाना,/ मल-मूत्र साफ करना, कपड़े धोना, बाल काटना,/हमारे खेतों-घरों में दास-कर्म करना।/तब तुम्हारी निष्ठा क्या होती?"(पृ.38-39)।

कँवल भारती का सम्पूर्ण काव्य-कर्म विचारधारात्मक है। यहाँ तक कि जहाँ-जहाँ वे भावुक से लगते भी हैं वहाँ भी उनका विचारक स्वर हावी होता है। इससे यह बात भी निकल कर आती है कि एक दलित पृष्ठभूमि से आने वाले कवि को इतना अवकाश ही नहीं कि वह अपने विचारों से बिखरे। विचारों से बिखरने के मतलब बद हालातों का और बदतर हो जाना है। किन्तु भाव और विचार का ऐसा अनूठा संतुलन है, जिसे एलन टेट के 'तनाव सिद्धांत' से जोड़कर देखा जा सकता है। यह काव्य-संग्रह अब प्रकाशन में नहीं

है। होनी चाहिए क्योंकि लगभग हर कविता से गुज़रते हुए बेहद तलखी से आपको महसूस होगा कि कँवल जी आज के हालत लगभग तीस साल पहले लिख चुके हैं। यह कहने में कोई संशय नहीं कि संग्रह हाथों हाथ बिक जाएगी। हाल ही में प्रोफेसर तुलसी राम स्मृति व्याख्यानमाला के अंतर्गत राहुल सांकृत्यायन सृजन पीठ, मउ में दिनांक 11 फरवरी, 2024 को दिए गए उनके भाषण के अंश को यहाँ उद्धृत करना ज़रूरी प्रतीत होता है- "समय की सूई सदैव आगे की ओर चलती है। वह पीछे की दिशा में नहीं लौटती। किंतु भारत में दर्शन की सूई शंकराचार्य के 'ब्रह्म सत्य और जगत मिथ्या' पर ही अटकी हुई है। यह कहना ज्यादा सही होगा कि उसे वहीं पर अटकाकर रखा गया है। इस सूई को न दयानंद सरस्वती आगे बढ़ा सके, न स्वामी विवेकानंद और न अरविंदो। क्योंकि सूई के आगे बढ़ने से मानव-मस्तिष्क का विकास होता है, ज्ञान-विज्ञान का विकास होता है, जबकि सूई के ठहरे रहने से ब्राह्मणवाद टिका रहता है। दूसरे शब्दों में यही सनातन दर्शन है, जो एक वैकल्पिक दर्शन के रूप में थोपा जा रहा है। लगभग इसी बात को इस काव्य संग्रह की भूमिका लिखते हुए ओमप्रकाश वाल्मीकि जी ने दर्ज किया है। भूमिका की शुरुआत में ही कँवल जी जिस मानव-मस्तिष्क के विकास की बात करते हैं उसे ही वाल्मीकि जी 'आधुनिकता बोध' से जोड़कर देखने की कोशिश करते हैं। हमारे समाज की सबसे बड़ी विडंबना यह है कि हम केवल बाह्य स्वर से आधुनिक हुए हैं। वाल्मीकि जी कहते हैं - "हिन्दी कविता का बाह्य स्वर, उसकी अंतर धारा से भिन्न है। विभिन्न काव्य-आन्दोलनों और काल निर्धारण में विद्वानों ने अपने निष्कर्षों में बाह्य रूप को ही स्थापित किया है। हिन्दी कविता का यह एकांगी स्वस्वर उसे आधुनिक होने से रोकता है। उसकी सामाजिकता पर सवाल खड़े करता है। इसके ठीक विपरीत हिन्दी दलित कविता अपनी सामाजिक चेतना के कारण सजग और जीवंत दिखाई पड़ती है।" (भूमिका से, पृ. 9)

असिस्टेंट प्रोफेसर, हिन्दी विभाग,
नागालैंड विश्वविद्यालय,
कोहिमा-797004

हिंदी प्रवासी उपन्यास : दर्द और आशा के बीच का सफर

डॉ राजेश कुमार आर



प्रवासी साहित्य आधुनिक हिन्दी साहित्य में एक नयी मनोवैज्ञानिक दृष्टि प्रस्तुत करता है। ये साहित्य उन लेखकों की अभिव्यक्ति है, जो अपने देश और संस्कृति से कटकर नई भूमि में बसे हुए हैं, और जिन्होंने अपने जीवन की नई परिस्थितियों से तालमेल बिठाते हुए अपनी रचनात्मकता को नया स्वर दिया है। वे अपने मूल परिवेश से दूर होते हुए भी, अपने भीतर की गहराई में नई उर्जा और चेतना का संचार करते हैं। इस नए परिवेश में उनकी भावनाएँ और संवेदनाएँ परिवर्तित होती हैं; वे एक नई संस्कृति, समाज और मान्यताओं को अपनाते हैं और अपने मूल्यों को नए नजरिये से देखने लगते हैं। प्रवासी लेखक अपने जन्मस्थान और संस्कृति को पीछे छोड़कर किसी अन्य देशकाल में जीवन बिताते हैं। इसका परिणाम यह होता है कि उनके जीवन में नए विचार, सोच और दृष्टिकोण का विकास होता है, जो उनके साहित्य को अनूठा बनाता।

प्रवासी हिन्दी साहित्य को सामान्यतः दो श्रेणियों में बाँटा जा सकता है। पहली श्रेणी में वे लोग आते हैं जो औपनिवेशिक काल में गिरमिटिया मजदूरों के रूप में मॉरीशस, गुयाना, फिजी, सूरीनाम और त्रिनिनाद जैसे देशों में ले जाए गए थे। ये लोग अपने साथ भारतीय संस्कृति, परंपराएँ, और भाषा का एक अंश लेकर गए, जो उन्हें वहाँ के कठिन जीवन और नए समाज में अपनी पहचान बनाए रखने में सहायक था। उनके साहित्य में अपने देश की यादें, भारतीय जीवन शैली, और उस विदेशी भूमि में संघर्ष की कहानियाँ विशेष रूप से उभरकर आती हैं। इन लेखकों का साहित्य उनके सांस्कृतिक संघर्षों, प्रवासी जीवन की कठोरता, और सामाजिक समायोजन की अनूठी अभिव्यक्ति है।

दूसरी श्रेणी में आधुनिक प्रवासी भारतीय आते हैं, जो 20 वीं सदी के उत्तरार्ध में भारत के स्वतंत्रता प्राप्त करने के बाद शिक्षा, रोजगार और बेहतर अवसरों की तलाश में अमेरिका, ब्रिटेन, कनाडा, जर्मनी और खाड़ी देशों में जाकर बसे। इन प्रवासियों के साहित्य में उनकी नई भूमि के प्रति आकर्षण, सांस्कृतिक बदलाव, और दोनों संस्कृतियों

के बीच संतुलन बनाने की कोशिश को चित्रित किया गया है। इन लेखकों के साहित्य में अपने पुराने मूल्यों और नई भूमि में प्राप्त संस्कारों के बीच संघर्ष और सामंजस्य की प्रवृत्ति स्पष्ट दिखाई देती है। वे अपने अनुभवों को एक ऐसे दृष्टिकोण से प्रस्तुत करते हैं, जिसमें भारतीय संस्कारों और आधुनिक जीवन-शैली के साथ तालमेल का संघर्ष दिखाई देता है।

प्रवासी साहित्य का एक महत्वपूर्ण पहलू यह है कि यह भारतीय समाज के पुराने और पारंपरिक मूल्यों की नई दृष्टिकोण से पुनर्व्याख्या करता है। जैसे-जैसे ये लेखक अपने नए देश में बसते हैं, उनके दृष्टिकोण में परिवर्तन आता है, जो उनके साहित्य में भी परिलक्षित होता है। प्रेमचंद की कहानी 'यह मेरी जन्मभूमि है' और 'शूद्रा' तथा चंद्रधर शर्मा 'गुलेरी' की 'उसने कहा था' जैसी रचनाएँ प्रवासी जीवन के विभिन्न पहलुओं और उसमें निहित सामाजिक, सांस्कृतिक, और राजनीतिक विषयों की पहचान करवाती हैं। इन रचनाओं के पात्र और कथानक भारतीय और विदेशी संदर्भों का सामंजस्य प्रस्तुत करते हैं।

प्रवासी हिन्दी साहित्य की विशेषता उसकी भाषा शैली में भी देखी जा सकती है। यह साहित्य अपने कथानक और चरित्रों के माध्यम से विभिन्न संस्कृतियों के बीच पुल का काम करता है। यहाँ न केवल भाषा में विशिष्टता होती है, बल्कि संवेदनाओं की गहराई और विषयों का चयन भी इसे विशिष्ट बनाते हैं। प्रवासी साहित्य में विदेशी जीवन का अनुभव और भारतीय परंपराओं का समावेश एक विशिष्ट मिश्रण प्रस्तुत करता है। ये लेखक अपने भीतर की द्वंद्वत्मकता को लेखन के माध्यम से उजागर करते हैं, जिसमें जड़ों से जुड़ाव और नए परिवेश में अस्तित्व की तलाश शामिल है। वर्तमान समय में प्रवासी साहित्य केवल साहित्य का विषय नहीं रहा, बल्कि यह सामाजिक अध्ययन का भी एक महत्वपूर्ण हिस्सा बन चुका है। हिन्दी प्रवासी साहित्य ने न केवल हिन्दी साहित्य को विस्तार दिया है, बल्कि यह हिन्दी साहित्य के शोधकर्ताओं, आलोचकों, और पाठकों को भी नई दृष्टि प्रदान कर रहा है। इन प्रवासी

भारतीयों के जीवन के संघर्ष और भावनाओं की अनुगूँज प्रवासी साहित्य में बखूबी दिखाई देती है, विशेषकर उपन्यासों के माध्यम से।

प्रवासी भारतीयों की सबसे बड़ी चुनौती है उनकी दोहरी पहचान। भारतीय मूल के कई लोग, विशेषकर यूरोपीय देशों में बसे हुए लोग, न तो अपने वर्तमान देश में पूरी तरह से खुद को स्वीकार कर पाते हैं और न ही भारत में लौटकर वे उसी तरह का अपनापन महसूस कर पाते हैं। उदाहरण के लिए, अर्चना पैन्थली का उपन्यास वेयर टू आई बिलांग इस प्रश्न का प्रतिनिधित्व करता है कि 'मैं कहाँ से हूँ?' इस उपन्यास में डेनमार्क में बसे भारतीयों के जीवन की दुविधा और संघर्ष को प्रभावी ढंग से दिखाया गया है। वहाँ बसे भारतीय अपने नए देश में पूरी तरह से डेनिश महसूस नहीं करते, और भारत में वे अजनबी प्रतीत होते हैं।

वेयर टू आई बिलांग उपन्यास के आरम्भ में 'पाठकों से' शीर्षक में अर्चना पैन्थली ने डेनमार्क में बसे प्रवासी भारतीयों की संक्षिप्त जानकारी दी है। इंडियन कम्युनिटी यहाँ हर तरह के पेशे में संलग्न है-रिसर्च, इंजीनियरिंग, फाइनेंस से लेकर किराने की दुकान, इंडियन रेस्टोरेंट के मालिक व बस टैक्सी के चालक हैं। डेनमार्क में इंडियन इमीग्रेंट्स को दो वर्गों में बाँटा जा सकता है। पहला रिफ्यूजी या वह तबका है जो अपने भारत को अलविदा कह हमेशा के लिए डेनमार्क बस जाने के उद्देश्य से आया। कालान्तर में डेनिश नागरिकता अपनाकर इसी देश का हो गया। दूसरा प्लावी वर्ग जो मुख्यतः संयुक्त राष्ट्र संघ मल्टीनेशनल कम्पनी में कार्य करने आता है कुछ वर्ष यहाँ रहकर, यहाँ के अनुभव बटोर कर किसी अन्य गन्तव्य की ओर चला जाता है।¹

प्रस्तुत उपन्यास में आप्रवासन से जुड़े मुद्दों, आप्रवासित परिवारों और समुदायों की स्थिति को बखूबी दर्शाया गया है। डेनमार्क में रहने वाली रीना और अन्य प्रवासी बच्चों से अक्सर पूछा जाता है - "वोर डू कामर फरा?" (तुम कहाँ से हो?)। यह सवाल उन्हें हैरान कर देता है, क्योंकि यही सवाल उनसे उनके अपने मूल देश में भी किया जाता है। डेनमार्क में रहते हुए वे खुद को कभी पूरी तरह से डेनिश नहीं समझ पाते, और जब अपने देश लौटते हैं, तो वहाँ भी उन्हें एक बाहरी व्यक्तिकी तरह महसूस होता है। 'लोगों के भीतर क्या उमड़ रहा है, उनके मन मस्तक में क्या घुमड

रहा है, मैंने सिर्फ इसकी प्रस्तुतीकरण करने की चेष्टा की है। अपनी तरफ से कुछ नहीं लिखा। मैं उसे सहमत असहमत भी नहीं, हाँ, मेरा अनुभव सीमित हो सकता है।"²

सामाजिक और पारिवारिक संबंधों में टकराव भी प्रवासी जीवन का एक अभिन्न अंग है। सुषम बेदी के उपन्यास मोरचे में मुख्य पात्र तनु को एक हिंसक पति और जीवन के अन्य मोर्चों पर अनवरत संघर्ष करना पड़ता है। यह उपन्यास दिखाती है कि कैसे एक प्रवासी महिला अपने और अपने परिवार की सुरक्षा के लिए अलग-अलग स्तरों पर संघर्ष करती है, और समाज से आश्रय की तलाश करती है। "तनु घिरी हुई है कितने ही मोरचों से, लगातार लड़ना है उसे। कभी माँ कवच बनकर आती है उसकी रक्षा को, कभी भाई तो कभी बहन। रिश्ते, करीबी लोग सहायक बन सकते हैं पर एक मार खाई औरत को जीवन खुद ही जीना होता है। पत्नीत्व की अपेक्षाओं और पेशे की चुनौतियों दोनों का सामना करना होता है और अन्ततः अपने लिए एक सुरक्षित स्थान और सही दिशा चुननी होती है। एक हिंसक पति के चक्कर में फँसी तनु न तो रिश्ते के बाहर निकल पाती है, न ही उसके बीच रहने के काबिल। विदेशी भूमि के अजनबी परिवेश में गिरती-पड़ती, ठोकरें खाती और सही रास्ते तलाशती तनु की बेजोड़ कहानी है सुषम बेदी के उपन्यास मोरचे में।"³

इसी प्रकार बेदी का दूसरा उपन्यास नवाभूम की रसकथा प्रेम के माध्यम से प्रवासी जीवन के भीतरी तहों और द्वंद्वों को उकेरता है। आदित्य और केतकी की कहानी भारतीय परंपराओं और अमेरिकी समाज के खुलेपन के बीच उलझी हुई है। यह दिखाता है कि प्रवासी भारतीय अपने व्यक्तिगत संबंधों में भी उन मूल्यों और परंपराओं से घिरे रहते हैं जो उन्हें भारत से मिले हैं, लेकिन विदेशी समाज के प्रभावों के कारण उन्हें नए तरीके से चुनौती देती हैं। उपन्यास के नायक और नायिका, अमेरिकी परिवेश में पले-बढ़े होने के कारण, इस प्रेम को कुछ असामान्य नहीं मानते। लेकिन समय के साथ, आदित्य को खटकने लगता है जब केतकी अपने दोस्तों के साथ मेल-जोल बढ़ाने लगती है और उन्हें अपने जीवन में जगह देती है, जो उसकी मर्दवादी सोच के खिलाफ है। आदित्य केतकी से सम्पूर्ण समर्पण की अपेक्षा करता है, लेकिन कुछ कारणों से यह केतकी के लिए संभव नहीं हो पाता। इस कारण

उनका रिश्ता चरम पर पहुँचने से पहले ही टूट जाता है। आदित्य स्पष्ट रूप से कहता है, “मैं रिश्ता तोड़ रहा हूँ। जो मैं चाहता हूँ, वह तुम नहीं हो सकती। और जो तुम चाहती हो, वह मैं नहीं बन सकता।”⁴

कुछ प्रवासी उपन्यास पारिवारिक हिंसा, सामाजिक असमानताओं और सांस्कृतिक टकराव को गहराई से समझते हैं। कमलेश चौहान का सात फेरों से धोखा अमेरिकी समाज में एक प्रवासी महिला की कठिनाइयों को उजागर करता है। कमल कपूर की राय में - “प्रस्तुत (सात फेरों से धोखा) कृति एक मध्यवर्गीय सीधी-सरल भारतीय लड़की की व्यथा कथा है या कह लीजिए विदेशी धरा पर गुजारे उसके अनेक कष्टमय बरसों का लेखा-जोखा है। जो यह दर्शाने में सुसक्षम है कि अग्नि-साक्षी, वैदिक मंत्रोच्चारण एवं सातों वचन सदा सुरक्षा प्रदान नहीं करते। धोखे के धुंध की चादर तले दम तोड़ देते हैं ये। साथ ही तथाकथित सुसभ्य विदेशी धरती सिर्फ सुख-सुविधाओं की पनाहगार और शांति संतुष्टि की मुस्कान नहीं विकृतियों, विसंगतियों और भटकन की अंधी शान भी है। यह चकाचौंध दिखावटी है। लेखिका की बरसों पूर्व देखी अथवा भोगी मार्मिक छटपटाहट है, जो उपन्यास में अपनी पूर्ण जीवंतता तथा संवेदनशीलता सहित उभर कर आई है। कथा-यात्रा भारत भूमि से प्रारम्भ होकर ब्रिटेन कनाडा के नगरों-उपनगरों से गुजरती हुई विश्व के सर्वाधिक समृद्ध देश अमेरिका के प्रशांत महासागर के किनारे बसे कला एवं मनोरंजन के सुंदर शहर लॉसएंजिल्स में आकर थमती है।”⁵ यह उपन्यास दिखाता है कि विदेशी धरती पर संबंधों की नींव कितनी कठिन परिस्थितियों से होकर गुजरती है। विवाह के सात फेरों की पवित्रता, जो भारतीय समाज में स्थायी मानी जाती है, यहाँ एक छलावा बन जाती है।

चौहान का दूसरा उपन्यास सात समुंदर पार एक साधारण महिला की विदेशी धरती पर अपने मूल संस्कारों को जीवित रखने की अदम्य कोशिश को दर्शाता है, जिसमें भारतीय और पश्चिमी संस्कृतियों, विशेषकर अमेरिका, के बीच एक गहरी दूरी को उजागर करता है। वहाँ की जलवायु के कारण बच्चे जल्दी बड़े हो जाते हैं और विवाह से पहले ही स्वच्छंद जीवन जीने के लिए तत्पर रहते हैं। उनकी इच्छाओं और भावनाओं को आसानी से दबाया नहीं जा सकता। फिर भी, वे अपने भारतीय मूल्यों, देश की जड़ों

और धार्मिक आस्थाओं से पूरी तरह से कट नहीं पाते।

लेखिका के शब्दों में - “वहाँ की जलवायु में बच्चे शीघ्र जवान हो जाते हैं और बहुत जल्द विवाह से पूर्व ही बाद वाली जिन्दगी जीने को तत्पर हो जाते हैं। उनकी इन भावनाओं को दबाया नहीं जा सकता। हालांकि वे अपने भारतीय संस्कारों, अपने देश के लगाव और अपने धर्म के प्रति निष्ठा को भी पूरी तरह से त्याग नहीं कर पाते।”⁶ यह उपन्यास सांस्कृतिक संघर्ष और पहचान की जटिलताओं का दस्तावेज है, जहाँ एक ओर वे आधुनिकता के आकर्षण में फंसते हैं, वहीं दूसरी ओर पारंपरिक मूल्यों की ओर भी उनकी खींच है।

सांस्कृतिक अस्मिता और व्यक्तिगत पहचान की खोज प्रवासी साहित्य की केंद्रीय थीम है। दिव्या माथुर का शाम भर बातें ब्रिटेन में बसे भारतीयों की जीवनशैली और उनकी भाषा के माध्यम से भारतीय समाज के विविध रूपों को सामने लाता है। यह उपन्यास प्रवासी जीवन के आम-जीवन के हंसी-मजाक और सरल भावनाओं को व्यक्त करने के साथ ही भारतीय और पश्चिमी संस्कृति के बीच के अंतर को भी बारीकी से दिखाता है। न भेज्यो बिदेस सुदर्शन प्रियदर्शिनी का उपन्यास है, जो उन लड़कियों की व्यथा को व्यक्त करता है जो शादी के बाद विदेश चली जाती हैं और वहाँ अपने अस्तित्व के लिए संघर्ष करती हैं। वहीं जलाक में भारतीय और पश्चिमी संस्कृतियों के टकराव को एक साहसी तरीके से प्रस्तुत किया गया है। इसमें भारतीय मूल की एक लड़की के जीवन में आने वाले परिवर्तनों और संघर्षों का विवरण है जो उसे पश्चिमी समाज के प्रभाव के कारण नित नए द्वंद्व में डाल देता है।

नरेश भारतीय की दिशाएँ बदल गईं तीन पीढ़ियों की कहानी है, जिनमें पहली पीढ़ी वापस भारत लौटने का सपना देखती है, दूसरी पीढ़ी अपने भारतीय मूल को लेकर उलझी रहती है, और तीसरी पीढ़ी उस जीवन सत्य को समझती है कि उसका अपना मूल अब वही भूमि है जहाँ वह जन्मी और पली-बढ़ी है। भूमिका में उन्होंने लिखा है - “सुख की खोज में देश को छोड़ विदेश गमन कर गए भारतीयों की पहली पीढ़ी उस ललक को कभी भी त्याग न पाई कि उसे लौट जाना है भारत। दूसरी पीढ़ी उहापोह ग्रस्त हुई। रास्ता भटक गई या परिवेश की चुनौतियों के साथ ऐसे जूझी कि अपने मूल की पहचान से घबराने लगी। तीसरी पीढ़ी उस

जीवन सत्य के साक्षात्कार करके इस निष्कर्ष पर पहुँची कि वह अपना मूल इस भूमि को ही मानेगी, जहाँ वह जन्मी-पली है।... दिशाएँ बदल गईं एक ऐसे ही प्रवासी परिवार की कहानी है।”⁷

सर्वाधिक प्रवासी उपन्यास भारतीय साहित्य में एक महत्वपूर्ण स्थान रखते हैं, क्योंकि ये न केवल प्रवासी जीवन की जटिलताओं को दर्शाते हैं, बल्कि भारतीय संस्कृति और पहचान के महत्वपूर्ण पहलुओं को भी उजागर करते हैं। जैसे कि कुन्ती के बेटे में अभिमन्यु अनंत ने प्रवासी भारतीयों की समस्याओं, सांस्कृतिक संघर्ष और आत्म-खोज के मुद्दों को बखूबी प्रस्तुत किया है। इसी प्रकार, काशीनाथ सिंह का अलका उपन्यास भारतीय प्रवासियों के जीवन की चुनौतियों और उनके सामाजिक वातावरण को बारीकी से चित्रित करता है। मासूमियत में राधाकृष्ण माथुर ने प्रवासी समुदाय की अनकही कहानियों को उजागर किया है, जो उनकी भिन्नता और संघर्ष को दर्शाता है। हैदराबाद के बंगलो उपन्यास में अनिल मेहता ने प्रवासियों के आर्थिक और सामाजिक जीवन का विवरण दिया है, जो पाठक को उनके वास्तविक अनुभवों से जोड़ता है। ये उपन्यास न केवल प्रवासी जीवन की वास्तविकता को दर्शाते हैं, बल्कि सांस्कृतिक धरोहर और व्यक्तिगत पहचान की महत्ता को भी स्पष्ट करते हैं। प्रवासी साहित्य एक ऐसा मंच प्रदान करता है, जहाँ पाठक विभिन्न अनुभवों, भावनाओं और परंपराओं के बीच के जटिल संबंधों को समझ सकते हैं, जिससे यह साहित्य का एक महत्वपूर्ण अंग बन जाता है।

भारतीय प्रवासी साहित्य में लेखक एक नई पहचान के संघर्ष को प्रमुखता से प्रस्तुत करते हैं। अपनी जन्मभूमि की संस्कृति और मूल्य प्रणाली से जुड़े रहने का प्रयास करते हुए नए देश की संस्कृति में आत्मसात होने की जटिलताएँ इन पात्रों की यात्रा का केंद्रीय हिस्सा बन जाता है। ये पात्र एक दोहरी पहचान के साथ संघर्ष करते हैं, जहाँ उनकी आत्मा एक तरफ अपनी परंपराओं और रीति-रिवाजों में उलझी रहती है, वहीं दूसरी तरफ वे उस नई संस्कृति की मांगों के साथ तालमेल बिठाने का प्रयास करते हैं, जिसमें वे अब बस गए हैं। उदाहरण के लिए, विभूति नारायण राय की घर वापसी में मुख्य पात्र घर और अपनी जड़ों की खोज का प्रयास करता है, जो उसे अपने मूल स्थान और उसकी

पहचान के प्रतीकों से जोड़ने की कोशिश करता है। यह उपन्यास एक आंतरिक यात्रा को प्रदर्शित करता है, जहाँ घर लौटने की लालसा और वर्तमान स्थिति के साथ सामंजस्य बैठाने की मजबूरी में नायक खुद को पाता है।

कई प्रवासियों के लिए भाषा और संचार एक बड़ी बाधा बनकर उभरते हैं। अपनी जन्मभूमि की भाषा से जुड़ी संवेदनाओं को बनाए रखना और एक नई भाषा को सीखने और आत्मसात करने के बीच संघर्ष करना, उनके लिए एक निरंतर चुनौती होती है जैसे सलमान रश्दी की मिडनाइट्स चिल्ड्रन में, जहाँ मुख्य पात्र भाषा के अवरोधों का सामना करते हैं। भाषा केवल संचार का माध्यम नहीं है, बल्कि यह सांस्कृतिक धरोहर का भी एक प्रतीक है। जब कोई प्रवासी नई भाषा में संवाद स्थापित करने की कोशिश करता है, तो उसे अपनी मातृभाषा से दूर होने का दर्द भी महसूस होता है। इस प्रक्रिया में वह अपनी पहचान के एक हिस्से को खोता हुआ महसूस करता है, जो उसे उसकी जड़ों से जुड़ने में बाधा डालता है।

परिवार और रिश्तों में उत्पन्न असामंजस्य भी प्रवासी जीवन का एक महत्वपूर्ण हिस्सा है। विदेश में बसने के बाद अपने परिवार और जड़ों से जुड़ा रहना उनके लिए एक भावनात्मक चुनौती बन जाता है। नई संस्कृति और जीवनशैली में ढलते हुए, परिवार के सदस्य अलग-अलग धाराओं में बहने लगते हैं। इसका गहरा चित्रण झुम्पा लाहिडी की द नेमसेक में देखने को मिलता है, जहाँ परिवार की पीढ़ियों के बीच सांस्कृतिक मतभेद और अलगाव उत्पन्न होता है। एक तरफ नई पीढ़ी अपने माता-पिता की परंपराओं और मूल्यों से खुद को दूर पाती है, तो दूसरी तरफ पुरानी पीढ़ी अपने बच्चों को अपनी संस्कृति से जोड़ने का प्रयास करती है। इस द्वंद्व में परिवार के सदस्य एक दूसरे के करीब होने के बावजूद एक अदृश्य दीवार से बंटे रहते हैं, जो उनके रिश्तों को कमजोर करती है।

भारतीय प्रवासियों को नए समाज में नस्लीय भेदभाव का सामना भी करना पड़ता है, जो उनके मानसिक संतुलन और आत्मसम्मान को चोट पहुँचाता है। नस्लीय भेदभाव प्रवासियों को केवल बाहरी रूप से नहीं, बल्कि आंतरिक रूप से भी प्रभावित करता है। यह उनके आत्म-विश्लेषण और आत्म-सम्मान पर गहरा असर डालता है। अरविंद अडिगा के द वॉइंट टाइगर में, इस भेदभाव और

वर्ग संघर्ष के जरिए प्रवासियों की हकीकत को उजागर किया गया है। इस उपन्यास में प्रवासी नायक उस समाज में खुद को स्थापित करने का प्रयास करता है, जहाँ उसे उसके रंग, उसकी भाषा और उसके देश के आधार पर आंका जाता है। यह स्थिति उसे न केवल सामाजिक स्तर से बल्कि भावनात्मक रूप से भी प्रभावित करती है, और उसके व्यक्तित्व में एक अजीब प्रकार की द्वंद्वत्मकता को जन्म देती है।

विदेश में स्थायित्व प्राप्त करना, विशेष रूप से वित्तीय स्थिरता हासिल करना, प्रवासियों के लिए एक बड़ी चुनौती है। नए देश में अपनी पहचान बनाने के साथ-साथ आर्थिक स्तर से स्वतंत्र और सशक्त बनना एक संघर्ष भरी यात्रा है। अनेक भारतीय प्रवासी उपन्यासों, जैसे कि द लास्ट सांग ऑफ डस्क में, इस आर्थिक संघर्ष का मार्मिक चित्रण किया गया है। इस उपन्यास में पात्र आर्थिक असुरक्षाओं और जीवन यापन की चुनौतियों का सामना करते हैं, जिससे उनकी भावनात्मक स्थिरता भी प्रभावित होती है। आर्थिक असुरक्षा और संसाधनों की कमी उन्हें अपने घर-परिवार के लिए आर्थिक सहायता प्रदान करने में अक्षम बनाती है, जो उनकी चिंता को और भी बढ़ा देती है।

प्रवासियों के जीवन में भावनात्मक रिश्ते भी एक चुनौती बनते हैं, जो उनके अस्तित्व और जीवनशैली को प्रभावित करते हैं। एक नई संस्कृति और समाज में प्रेम और विवाह संबंधी आदर्श अक्सर बदल जाते हैं। प्रवासी साहित्य में इस विषय पर भी काफी प्रकाश डाला गया है। चंपा की पराई गंध में नायक के रिश्तों का संघर्ष उसकी दो संस्कृतियों के बीच झूलती हुई स्थिति को दर्शाता है। जहाँ एक तरफ उसके दिल में अपनी मातृभूमि की संस्कृति के प्रति गहरी आस्था है, वहीं दूसरी तरफ वह नए समाज के साथ रिश्तों में जुड़ने की कोशिश करता है। इस प्रक्रिया में वह भावनात्मक स्तर से खुद को अजीब असमंजस में पाता है, जहाँ उसे यह तय करना कठिन हो जाता है कि वह किस संस्कृति के प्रति निष्ठावान रहे।

इन सब पहलुओं के अलावा प्रवासी साहित्य के माध्यम से यह भी समझा जा सकता है कि प्रवासी अपनी जड़ों से भले ही भौतिक स्तर से दूर हों, परंतु उनकी भावनाएँ और उनकी सांस्कृतिक पहचान अभी भी उन्हें उनकी

जन्मभूमि से जोड़ती हैं। प्रवासी साहित्य इन सभी संघर्षों, चुनौतियों और सांस्कृतिक द्वंद्व को बखूबी प्रस्तुत करता है, जो प्रवासियों के जीवन की जटिलताओं को समझने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है।

निष्कर्ष : प्रवासी उपन्यासों का अध्ययन हमें प्रवासी जीवन की जटिलताओं, संघर्षों और सांस्कृतिक द्वंद्व को समझने का अवसर देता है। इन उपन्यासों के माध्यम से लेखक प्रवासियों के उन भावनात्मक, सामाजिक, आर्थिक और सांस्कृतिक संघर्षों को उजागर करते हैं, जो उन्हें नए देश में अपनी पहचान बनाने के दौरान झेलने पड़ते हैं। प्रवासी साहित्य एक सेतु का काम करता है, जो प्रवासियों की पीड़ा, उनके दर्द, और उनकी भावनाओं को साहित्यिक स्तर में प्रस्तुत करता है।

इसके माध्यम से पाठक समझ पाता है कि प्रवासी सिर्फ अपने भौतिक संसाधनों को छोड़कर ही नहीं, बल्कि अपनी सांस्कृतिक और भावनात्मक धरोहर का भी एक हिस्सा पीछे छोड़ने के लिए मजबूर हो जाते हैं। प्रवासी साहित्य उनके मन के भीतर के द्वंद्व, उनकी पहचान की खोज और उनकी सामाजिक स्थिति में उत्पन्न संघर्ष को न केवल प्रस्तुत करता है, बल्कि उन्हें अपनी जड़ों से जोड़ने का एक प्रयास भी करता है।

इस प्रकार, प्रवासी उपन्यास न केवल प्रवासियों की दारुण स्थिति और उनके भीतर की पीड़ा का चित्रण करते हैं, बल्कि यह भी संकेत देते हैं कि उनकी पहचान और अस्तित्व हमेशा उनकी मातृभूमि और परंपराओं से गहराई से जुड़ी रहती है, चाहे वे कहीं भी हों।

संदर्भ ग्रंथ सूची

1. अर्चना पैन्वूली, वेयर डू आई बिलांग, 2013, पृ. 8
2. अर्चना पैन्वूली, वेयर डू आई बिलांग, 2013, पृ. 8
3. सुषम बेदी, मोरचे, 2006, पृ. 2
4. सुषम बेदी, नवाभूम की रसकथा, 2018, पृ. 225.
5. कमलेश चौहान, सात फेरों से धोखा, 2010, पृ. 6
6. कमलेश चौहान 'गौरी' सात समन्दर पार, 2005, पृ.2
7. नरेश भारतीय, दिशाएँ बदल गईं, 2006, पृ.3

असोसिएट प्रोफेसर, हिन्दी विभाग
महात्मा गांधी कॉलेज, तिस्वनंतपुरम

हमारी संस्कृति में वृद्धों का स्थान

अचचाम्मा अब्राहम



प्रस्तावना - मानव द्वारा सीखे व्यवहार को ही संस्कृति कहते हैं। जिसमें मनुष्य का व्यक्तित्व पलता और पनपता है। अर्थात् संस्कृति के अंदर हमारी प्रविधियों, प्रथाएँ, हमारे विचार और व्यवहार व मूल्य हमारी संस्कृति के अन्तर्गत आते हैं जिसे हम एक पीढ़ी से दूसरे पीढ़ी को देते हैं। ताकि वह अपने आने वाली पीढ़ी को देकर हम इस संस्कृति का भविष्य और अच्छे तरीके से आगे बढ़ाये। संस्कृति को मैकाइवर एवं पेज ने इस प्रकार परिभाषित किया है- “संस्कृति हमारे दैनिक व्यवहार में कला, साहित्य, धर्म, मनोरंजन और आनंद में पाये जाने वाले रहन-सहन और विचार के ढंगों से हमारी प्रकृति की अभिव्यक्ति है।”

हमारे भारतवर्ष में प्राचीन समय से ही पारंपरिक रूप से हमारे घर परिवारों में बड़े बुजुर्गों का आदर - सम्मान करना जखी ही नहीं बल्कि सदियों से ही वह हमारी परंपरा रही है। और हम हर एक भारतवासी पीढ़ी दर पीढ़ी इस परंपरा को बड़ी श्रद्धा के साथ निभाते चले आ रहे हैं। इसलिए आज भी भारतवासी अपनी संस्कृति और परंपरा पर गर्व करते हैं। भारतीय समाज में संस्कृति या परंपरा की दृष्टि से कोई भी कार्य हो त्यौहार हो, ‘शादी-ब्याह हो’ बच्चों का जन्म, नामकरण या किसी भी विशेष अवसर पर बड़े बुजुर्गों की राय लिये बिना हम अपने कार्य को पूर्ण नहीं मानते हैं। बड़े बुजुर्गों की सलाह और आशीर्वाद से ही हमारा हर महत्वपूर्ण कार्य संपन्न माना जाता है। यही भारतीय संस्कृति और उसकी परंपरा रही है और यही बड़े बुजुर्ग पूरे परिवार के सही मार्ग दर्शन कर उन्हें आगे बढ़ने में पूरी सहायता करते हैं। ताकि भविष्य में वे अच्छे परिवार और अच्छे समाज का सही रूप धारण करने में सफल हो और अच्छे नागरिक बने ताकि हमारे समाज का सही ढंग से विकास हो सके।

आधुनिकीकरण के कारण संस्कृति का लुप्त होना-वर्तमान समाज में आधुनिकीकरण के कारण आज हमारी संस्कृति और हमारी परंपरा लुप्त होते दिखाई पड़ती है क्योंकि आधुनिकीकरण के कारण ही शहरीकरण को अधिक बढ़ावा मिला, जिसके कारण हमारे गाँव में जो किसान थे वे सब खेतीबाड़ी छोड़कर शहरों की तरफ पलायन करने लगे और शहर में बसकर उनकी स्थिति पहले से भी ज्यादा खराब होने लगी जबकि गाँवों में तो वह

अपनी जमीन के मालिक थे। लेकिन शहर आकर बसने लगे तो नौकरी न मिलने की वजह से छोटा मोटा कार्य करके गुजारा करने लगे। जिसके कारण परिवारों की स्थिति और भी बदतर होने लगी और संपूर्ण परिवार को भरपेट भोजन मिलना भी मुश्किल हो गया इसका सबसे ज्यादा प्रभाव बड़े बुजुर्गों पर पड़ा क्योंकि उनकी देखभाल या उनकी सेवा करना परिवार के सदस्यों को बहुत बोझ का अनुभव होता था। जिससे परिवार टूटने व बिखरने लगे और यहीं से वृद्धों का जीवन एक भयंकर त्रासदी भरा जीवन जीने के लिए विवश हो जाता है। समाज में लोग क्या कहेंगे? इस डर से वे कुछ बताते नहीं हैं और सब कुछ आँख मूंदकर सहने के लिये तैयार हो जाते हैं और यहीं से वे अकेलेपन की खाई में दिन प्रतिदिन उस ओर जाने के लिये मजबूर हो जाते हैं। एक तो शहर की भीड़ एवं तनाव भरी जिंदगी ऊपर से न कोई बोलने वाला और न कोई सुनने वाला होता है। ये अकेलापन ही उन्हें पहले अपने परिवार से और बाद में धीरे धीरे समाज से दूर होते चले जाते हैं और अंत में वे अपनी जिंदगी को एक बोझ के रूप में मानने लगते हैं जिसके कारण उन्हें कई शारीरिक एक मानसिक परेशानियों का सामना करना पड़ता है जिसके कारण में वे स्वयं को ही एक विकृत मानसिक अवस्था बना लेते हैं और समझते हैं कि उनके पास जो भी लोग हैं वे सब के सब उनका तिरस्कार करना चाहते हैं और किसी के मन में उनके लिए कोई स्नेह नहीं है जो कि काफी हद तक सही भी है।

माता-पिता के साथ दुर्व्यवहार - शहर आकर उनका जीवन पिंजरे में कैद पक्षी की तरह होता है। शहरों में गाँवों की तरह घर नहीं होते हैं शहरों में अधिकतर फ्लैट होते हैं और फ्लैट में इतनी जगह ही नहीं होती कि परिवार का हर सदस्य एक एक कमरे में सोये। यहाँ पर गिने चुने कमरों में पूरे परिवार को रहना पड़ता है। जिसके कारण वृद्धजन का यहाँ पर दम घुटता है। शहरीकरण के कारण आज का मानव फ्लैटों की संस्कृति को अपनी बहुत बड़ी उपलब्धि समझने की भूल कर रहा है। जिसकी वजह से वह अपने ही माता पिता को दुनिया का सबसे बड़ा बोझ मानते हैं और उन्हें किसी भी तरह से परिवार से निकाल कर वृद्ध सदनों

कैलव्योति

दिसंबर 2024

में पहुँचाने में उनको अत्यधिक तात्पर्य और जल्दी रहती है।

जो माता पिता शहरो में बसते हैं उन परिवारों में कहीं न कहीं पिता की पेशन पर ही घर टीका हुआ होता है। ऐसे में घर की जो माताएँ होती हैं उनकी स्थिति अन्यधिक दयनीय होती है वह अपने नैतिक दिनचर्या के कारण अपने पति पर निर्भर होती है। उनके कार्यों में और उनके इलाजों में कमी आती है। जिसकी वजह से वे माताएँ अपने जीवन का सर्वस्व लगाने के बावजूद उनके पास कुछ भी नहीं होता है चूँकि वह अपना पूरा जीवन तन मन धन से परिवार को संजोने में खर्च कर देती हैं। मन में आशा होने के बावजूद भी वह अपनी हर इच्छा और खुशी को परिवार के नाम पर न्यौछावर कर देती है। जिसके कारण वह कभी भी अपने ऊपर या अपने अरोग्य स्थिति पर ध्यान नहीं देती है। जिसके कारण वृद्धावस्था में उनका शरीर कमजोर हो जाता है और साथ ही साथ कई बीमारियों की शिकार भी हो जाती है और पहले की तरह कार्य करने में असमर्थ रहते हैं। और पहले की तरह परिवार को अपना योगदान देने में समर्थ नहीं होते हैं जिसकी वजह से परिवार के अन्य सदस्यों की अवहेलना झेलनी पड़ती है और बात-बात पर परिवार और समाज द्वारा एहसास करवाया जाता है कि आप हम सब पर एक बहुत बड़ी बोझ है। जिसके कारण उनके मन में कुंठा का जन्म होता है और धीरे-धीरे मानसिक परेशानियों और कई प्रकार की बीमारियों की जकड़न के कारण वह परिवार और समाज से दूर होने लगते हैं और उनका शेष जीवन अकेलेपन और नैराश्य से भर जाता है जिसकी वजह से वे अपने जीवन से ही हार मानने लगती है और उन्हें जीने की इच्छा खत्म होने लगती है कुछ साल पहले तक वृद्ध माता पिता अपने बच्चों के साथ हँसी खुशी रहते थे। जिससे परिवार में अधिक मेल जोल रहता था आज की स्थिति ठीक विपरीत है उसका कारण यह है कि आज पहले की तरह परिवार कुटुम्ब के रूप में नहीं रहता है आज के समय का परिवार छोटा परिवार है और इस परिवार में माता-पिता किसी बोझ से कम नहीं है। छोटा परिवार जहाँ पर अपने बच्चों की हर छोटी बड़ी जख्तों को पूर्णरूप प्रदान करता है। वहीं वे अपने खुद के माता-पिता के साथ गैर जैसा व्यवहार करते हैं जिस माता पिता ने उनके अच्छे भविष्य के लिये अपनी सारी उम्र अपनी जमा पूंजी खुद का आरोग्य और अपनी खाहिशों को दबाकर उनकी जिंदगी संवार दी। आज वहीं उनके लिए बहुत बड़े बोझ बन गये। और यही कारण है कि माता-पिता को यह तिरस्कार बिलकूल भी सहन नहीं कर

पाते हैं और यहीं से उनका जीवन नरक की ओर अग्रसर हो जाता है।

परिवारों में आपसी तालमेल हमारी और समाज की बहुत बड़ी ज़रूरत है जहाँ पर तालमेल में ऊँच नीच होता है वहाँ संबंधों में कड़वाहट आना शुरू हो जाता है लेकिन इस समय के अलावा हमारे समाज की एक सच यह भी है कि आधुनिक समाज में ऐसा भी नहीं है कि हर नौजवान अपने माता पिता के साथ दुर्व्यवहार ही करते हैं ऐसे नवजवान भी है जो अपने माता पिता का आदर सम्मान भी करते हैं। उनसे आशीर्वाद भी लेते हैं। और अपने प्रत्येक कार्य में अपने बड़ों के साथ सलाह मशवरा भी करते हैं ऐसा युवावर्ग जो अपने बड़ों को अपने साथ लेकर चलते हैं। वे सदैव अपने जीवन में और अपने कार्य क्षेत्र में सदैव खुश रहते हैं और दिन प्रतिदिन प्रगति भी करते हैं। जिससे परिवार में हमेशा एकता और खुशहाली का माहौल बना रहता है और ऐसे परिवारों को समाज में अच्छी प्रतिष्ठा एवं आदर व सम्मान भी होता है।

वहीं बड़े बुजुर्गों की ओर से बदलते समय और समाज की हालात के कारण अचानक से अपने परिवार की नई पीढ़ी के साथ संवेदनहीनता का व्यवहार होने लगता है। तो स्वाभाविक रूप से युवावर्ग को इस बात से बहुत ठेस पहुँचती है। और वह अपने घर में परायापन महसूस करने लगता है। ऐसी स्थिति में हमें बड़ों को संयम के साथ व्यवहार करने की ज़रूरत है। ताकि परिवार में शांति का माहौल हो और परस्पर विश्वास और एकता की भावना बनी रहे।

निष्कर्ष : हमारे इस गौरवमय संस्कृति को आगे बढ़ाने एवं और अधिक फलने फूलने के लिए हमें अपने मातापिता को मार्गदर्शक के रूप में साथ लेकर और अपने युवावर्ग का हाथ थाम कर इस गौरवमयी परंपरा को आगे बढ़ाते हुए आने वाली पीढ़ी को एक गौरवमयी धरोहर के रूप में उन्हें सौंपना है ताकि वे इसके महत्व को समझते हुए हम अपने परिवार और समाज के लिए एक आदर्श रूप बनकर आने वाली पीढ़ियों के सही मार्ग दर्शन करने में समर्थ हो सके। ताकि हम सब मिलकर एक अच्छे समाज की संरचना करने में पूर्णरूप से सफल हो सके।

सन्दर्भ ग्रन्थ

1. वृद्धावस्था विमर्श और हिन्दी कहानी-डॉ. शिवकुमार राजौरिया
2. वृद्ध विमर्श : कथा आलोचना - डॉ. शगुफ़ता नियाज़
शोध छात्रा, यूनिवर्सिटी कॉलेज, तिरुवनंतपुरम

केरलप्रीति
दिसंबर 2024

भाषा संस्कृति और साहित्य का अंतर्संबंध : भारतीय परिप्रेक्ष्य में

डॉ प्रीति के



भाषा, संस्कृति और साहित्य का अंतर्संबंध अत्यंत घनिष्ठ और अटूट है। ये तीनों किसी भी समाज की पहचान और उसकी सामूहिक चेतना को परिभाषित करते हैं। भाषा केवल संवाद का माध्यम नहीं है, बल्कि यह हमारे विचारों, भावनाओं और संस्कारों को अभिव्यक्त करने का माध्यम भी है। जब हम किसी भाषा में बोलते या लिखते हैं, तो हम उस भाषा की संस्कृति और इतिहास को भी अभिव्यक्त करते हैं। मानक भाषा 'भाषा' का आदर्शतम और निखरा हुआ रूप होती है। वस्तुतः "कई विभाषाओं में व्यवहृत होने वाली एक शिष्ट परिगृहीत विभाषा ही भाषा (मानक भाषा) कहलाती है।" भाषा का लिखित रूप व्याकरण के नियमों में बँधकर स्थिर होता है। भाषा को मानकीकृत या परिनिष्ठित करने का अर्थ उसमें एकस्पता लाना है।

भारत, अपनी विविधता और समृद्ध सांस्कृतिक विरासत के लिए जाना जाता है, जहाँ भाषा, साहित्य और संस्कृति का अटूट संबंध है। यहाँ की भाषाएँ केवल संवाद का माध्यम नहीं हैं, बल्कि वे सांस्कृतिक धरोहरों की संरक्षक भी हैं। संस्कृति, एक समाज की जीवन शैली, उसके मूल्य, विश्वास और प्रथाओं का संगठित रूप है। संस्कृति पर विचार करते हुए आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी लिखते हैं कि "मेरे विचार से सारे संसार के मनुष्यों की एक सामान्य मानव-संस्कृति हो सकती है। यह दूसरी बात है कि वह व्यापक संस्कृति अब तक सारे संसार में अनुभूत और अंगीकृत नहीं हो सकी है। नाना ऐतिहासिक परंपराओं के भीतर से गुजर कर और भौगोलिक परिस्थितियों में रहकर संसार के भिन्न-भिन्न समुदायों ने उस महान् मानवी संस्कृति के भिन्न-भिन्न पहलुओं का साक्षात्कार किया है। नाना प्रकार की धार्मिक साधनाओं, कलात्मक प्रयत्नों और सेवा, भक्तितथा योग मूलक अनुभूतियों के भीतर से मनुष्य उस महान् सत्य के व्यापक और परिपूर्ण रूप को क्रमशः प्राप्त करता जा रहा है, जिसे हम संस्कृति शब्द द्वारा व्यक्त करते हैं।"²

भाषा संस्कृति का महत्वपूर्ण हिस्सा है क्योंकि यह सांस्कृतिक विरासत को पीढ़ी दर पीढ़ी आगे बढ़ाने में सहायक होती है। यह संस्कृति के ज्ञान, परंपराओं और मान्यताओं को एक पीढ़ी से दूसरी पीढ़ी तक पहुँचाती है।

हमारे लोकगीत, कहानियाँ, मिथक और धार्मिक ग्रंथ आदि भाषा के माध्यम से ही पीढ़ी दर पीढ़ी जीवित रहती हैं। भाषा और संस्कृति के माध्यम से लोग अपने समाज के इतिहास, साहित्य, कला, रीति-रिवाज और त्योहारों को समझते और अपनाते हैं।

किसी भी समाज की सांस्कृतिक पहचान उसकी भाषा में ही प्रतिबिंबित होती है। बिना भाषा के, संस्कृति का संरक्षण और संचरण संभव नहीं हो सकता। भारत जैसे विविधता से भरपूर देश में, भाषाई विविधता हमारी सांस्कृतिक समृद्धि को दर्शाती है। हिंदी का भक्ति साहित्य, बांग्ला का रवीन्द्रनाथ टैगोर का साहित्य, तमिल संगम साहित्य, मलयालम साहित्य, पंजाबी साहित्य - सभी हमारे सांस्कृतिक धरोहर के उदाहरण हैं जो भाषा के माध्यम से जीवित हैं। साहित्य भाषा का सजीव रूप है, जिसमें संस्कृति की झलक स्पष्ट रूप से दिखाई देती है। साहित्यिक कृतियाँ एक समाज की संस्कृति का दर्पण होती हैं। यह संस्कृति, परंपरा, और समय के बदलावों को दर्शाता है।

भारतीय संस्कृति विश्व की प्राचीनतम और समृद्धतम संस्कृतियों में से एक है। इसकी जड़ें वैदिक काल से जुड़ी हैं, और यह समय के साथ विभिन्न विचारधाराओं और परंपराओं को समाहित करते हुए विकसित हुई है। भारतीय संस्कृति में विविधता, सहिष्णुता, और एकता के अद्वितीय मूल्य निहित हैं, जो इसे विशेष बनाते हैं। भारत एक बहुभाषी, बहुसांस्कृतिक और बहुधर्मी देश है, जहाँ भाषा, संस्कृति और साहित्य का गहरा संबंध है।

लोक संस्कृति पर विचार करते हुए श्यामाचरण दुबे ने कहा कि "नगरीकरण की प्रक्रिया ने लोक संस्कृतियों को पूरी तरह विश्रृंखल और विनष्ट तो नहीं किया, पर उनके स्वस्व और गठन में महत्वपूर्ण बदलाव अवश्य आए। नगर और ग्राम-संस्कृतियों का सह-अस्तित्व बना रहा और संसार के कई भागों में सावयवी संबंध विकसित हुए। कस्बाई और छोटे नगरों की संस्कृति ग्रामीण संस्कृति से बहुत अलग नहीं थी। बड़े नगरों और महानगरों के जीवन में भी लुके-छिपे लोक संस्कृति के कुछ तत्त्व बने रहे। औद्योगीकरण ने लोक संस्कृतियों और लोक-कलाओं के

सामने एक नयी चुनौती प्रस्तुत की। इसके प्रभाव से लोक संस्कृतियाँ लुप्त तो नहीं हुई, पर उन्हें एक नयी उभरती संस्कृति से अपना अनुकूलन करना पड़ा। आधुनिकीकरण की आँधी ने लोक-संस्कृतियों और लोक-कलाओं को बुरी तरह झकझोरा। सामूहिकता के हास, विशेषीकरण के उदय और जीवन के पक्षों के अंतरावलंबन के बदलते स्वरूपों ने लोक संस्कृति और लोक-कला के प्रकार्यों को ही बदल दिया। मनोरंजन के नये स्वर विकसित हुए। सौंदर्यबोध और कलात्मक सृजन ने नयी दिशाएँ अपनाई, शिक्षा की विषयवस्तु बदली और विशेषीकृत शैक्षिक संस्थाओं ने जन्म लिया।³ अतः लोक और संस्कृति दो अलग-अलग जीवन-वृत्तों और विचारधाराओं की संयुक्तचेतना का परिणाम है।

संस्कृत, हमारी प्राचीन भाषा, ज्ञान का अद्वितीय भंडार है। वेद, उपनिषद, महाभारत, और रामायण जैसे ग्रंथों ने विश्व को असीम ज्ञान प्रदान किया है। योग और ध्यान की प्रथाओं ने न केवल हमारे देश में बल्कि पूरी दुनिया में मानसिक और शारीरिक स्वास्थ्य के महत्व को स्थापित किया है। आयुर्वेद और प्राचीन चिकित्सा पद्धतियों ने सदियों से मानवता की सेवा की है और आज भी आधुनिक चिकित्सा विज्ञान के साथ मिलकर काम कर रही हैं। भारतीय संस्कृति में 'अतिथि देवो भव' की परंपरा है। अतिथि का स्वागत और सम्मान हमारी संस्कृति का अभिन्न हिस्सा है। सहिष्णुता और परस्पर सम्मान भारतीय समाज की नींव हैं। 'वसुधैव कुटुंबकम्' भारतीय संस्कृति और दर्शन का एक ऐसा महान विचार है जो समूचे विश्व को एक परिवार के स्वरूप में देखता है। इसका शाब्दिक अर्थ है कि - पूरा विश्व एक परिवार है। यह विचार भारतीय परंपरा की उदारता, सहिष्णुता और सबको समान दृष्टि से देखने की भावना को प्रकट करता है। इस सिद्धांत के अनुसार, सभी मनुष्य, चाहे वे किसी भी जाति, धर्म, रंग, या देश के हों, एक ही परिवार के सदस्य हैं। यह दृष्टिकोण न केवल मनुष्यों के बीच आपसी समझ और शांति को बढ़ावा देता है, बल्कि पर्यावरण और अन्य जीवों के प्रति भी हमारे कर्तव्यों की याद दिलाता है।

भारत में सैकड़ों भाषाएँ और बोलियाँ बोली जाती हैं। वर्तमान में भारतीय संविधान की आठवीं अनुसूची में 22 भाषाओं का उल्लेख है। ये असमिया, बंगाली, बोडो, डोगरी, गुजराती, हिंदी, कन्नड़, कश्मीरी, कोंकणी, मैथिली, मलयालम, मणिपुरी, मराठी, नेपाली, ओडिया, पंजाबी, संस्कृत,

संथाली, सिंधी, तमिल, तेलुगू और उर्दू। यह भाषाई विविधता हमारी संस्कृति को और अधिक समृद्ध बनाती है।

साहित्य और संस्कृति का संबंध अत्यंत घनिष्ठ और परस्पर पूरक होता है। साहित्य, किसी समाज की संस्कृति की अभिव्यक्ति का माध्यम है, और संस्कृति, साहित्य का प्रेरणास्रोत। साहित्य के माध्यम से सांस्कृतिक परंपराएँ, रीति-रिवाज, और ऐतिहासिक घटनाएँ संरक्षित की जाती हैं। प्राचीन ग्रंथ, महाकाव्य, लोककथाएँ, और लोकगीत समाज की सांस्कृतिक धरोहर को जीवित रखते हैं। भाषा संस्कृति का अभिन्न हिस्सा है और साहित्य भाषा के माध्यम से ही व्यक्त होता है। साहित्य में भाषा के विभिन्न स्वर, बोलियाँ, और शैली समाज की सांस्कृतिक विविधता को प्रतिबिंबित करते हैं। साहित्य समाज के नैतिक और सांस्कृतिक मूल्यों का प्रतिबिंब होता है। यह समाज की मान्यताओं, आस्थाओं, और जीवन मूल्यों को अभिव्यक्त करता है और उन्हें पीढ़ी दर पीढ़ी आगे बढ़ाता है। यह समाज के विभिन्न पहलुओं, जैसे कि जाति, धर्म, लिंग, और वर्ग को संवेदनशीलता से चित्रित करता है। यह समाज की पहचान को सुदृढ़ करता है और सामूहिक चेतना को व्यक्त करता है।

साहित्य विभिन्न संस्कृतियों के बीच संवाद का माध्यम बनता है। अनुवाद और साहित्यिक आदान-प्रदान के माध्यम से एक संस्कृति की विशेषताएँ, मूल्य, और अनुभव दूसरी संस्कृति के लोगों तक पहुँचते हैं। यह समाज में सांस्कृतिक परिवर्तन और सुधार का माध्यम भी होता है। साहित्यकार अपनी रचनाओं के माध्यम से सामाजिक बुराइयों, असमानताओं, और कुरीतियों पर प्रहार करते हैं और समाज में सकारात्मक बदलाव लाने का प्रयास करते हैं। उसी प्रकार लोक साहित्य में लोक संस्कृति की समृद्धि और विविधता प्रकट होती है। लोककथाएँ, लोकगीत, और लोकनाट्य समाज की मौखिक परंपराओं को संरक्षित करते हैं और आम जनता की सांस्कृतिक धरोहर को अभिव्यक्त करते हैं। भारतीय साहित्य में संस्कृति का महत्व अत्यधिक है, क्योंकि यह समाज की सामूहिक चेतना, परंपराओं और मूल्यों को प्रतिबिंबित करता है। भारतीय साहित्य में देश की सांस्कृतिक विविधता को खूबसूरती से दर्शाया गया है। विभिन्न भाषाओं, बोलियों, और क्षेत्रीय साहित्य में अलग-अलग संस्कृतियों की झलक मिलती है। भारतीय साहित्य ने प्राचीन समय से लेकर आधुनिक युग तक की सांस्कृतिक परंपराओं और ऐतिहासिक घटनाओं को संरक्षित किया है।

भारतीय लोक साहित्य, जैसे कि लोकगीत, लोककथा, और लोकनाट्य, समाज की मौखिक परंपराओं और संस्कृति को जीवित रखने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है। यह साहित्य ग्रामीण और शहरी दोनों ही क्षेत्रों की संस्कृति को प्रदर्शित करता है। आधुनिक भारतीय साहित्य में भी संस्कृति का महत्व बरकरार है। समकालीन लेखकों ने बदलते समय के साथ सामाजिक मुद्दों और सांस्कृतिक परिवर्तन को अपने लेखन में स्थान दिया है। भारतीय साहित्य ने सदियों से संस्कृति का संरक्षण और संवर्धन किया है, और यह प्रक्रिया आज भी जारी है। साहित्य और संस्कृति का यह आपसी संबंध भारतीय समाज की आत्मा को समझने और संजोने में सहायक है।

भारतीय संस्कृति की समृद्धि और विविधता ने विश्वभर में अपने गहरे प्रभाव छोड़े हैं। इसके विभिन्न आयाम, जैसे कि दर्शन, धर्म, कला, संगीत, नृत्य, साहित्य, और योग, ने न केवल भारतीय समाज को प्रभावित किया है, बल्कि विश्व के अनेक हिस्सों में भी अपना महत्व स्थापित किया है। भारतीय दर्शन और धर्म का विश्व पर व्यापक प्रभाव है। हिंदू धर्म, बौद्ध धर्म, जैन धर्म, और सिख धर्म की जड़ें भारत में हैं, और ये धर्म दुनिया के विभिन्न हिस्सों में व्यापक रूप से फैले हुए हैं। भगवद्गीता, उपनिषद, और महाभारत जैसे ग्रंथों ने विश्व के कई विचारकों और दार्शनिकों को प्रेरित किया है। योग और आयुर्वेद भारतीय संस्कृति के महत्वपूर्ण हिस्से हैं, जिन्होंने वैश्विक स्वास्थ्य और कल्याण पर गहरा प्रभाव डाला है। योग, जो शरीर, मन, और आत्मा की समग्रता को बढ़ावा देता है, आज विश्वभर में प्रचलित है। आयुर्वेदिक चिकित्सा और स्वास्थ्य प्रणालियाँ भी वैश्विक स्तर पर मान्यता प्राप्त कर चुकी हैं।

भारतीय कला और साहित्य ने वैश्विक मंच पर अपनी विशेष पहचान बनाई है। भारतीय चित्रकला, मूर्तिकला, और वास्तुकला ने विश्वभर में अपनी छाप छोड़ी है। भारतीय साहित्य, जिसमें महाकाव्य, काव्य, और आधुनिक साहित्य शामिल हैं, ने विश्व साहित्य को समृद्ध किया है। भारतीय संगीत और नृत्य की विविध शैलियाँ, जैसे कि शास्त्रीय संगीत (कर्नाटक और हिंदुस्तानी) और शास्त्रीय नृत्य (भरतनाट्यम, कथक, कुचिपुडी) ने वैश्विक दर्शकों को मंत्रमुग्ध किया है। इन शैलियों की जटिलता और सौंदर्य ने विश्वभर में सराहना प्राप्त की है। भारतीय त्योहार, जैसे कि दिवाली, होली, ईद, और क्रिसमस, ओणम विश्वभर में मनाए जाते हैं। इन त्योहारों की विशेषताएँ, जैसे कि रंग,

रोशनी, और सांस्कृतिक कार्यक्रम, भारतीय संस्कृति की जीवंतता को दर्शाते हैं। भारतीय फिल्म उद्योग, विशेषकर बॉलीवुड, ने वैश्विक सिनेमा पर गहरा प्रभाव डाला है। भारतीय फिल्मों, संगीत, और नृत्य ने विश्वभर में प्रशंसा पाई है और भारतीय संस्कृति को एक नए स्तर पर पहुँचाया है।

भारतीय संस्कृति का विश्व में महत्व इसकी समृद्धि, विविधता, और सहिष्णुता में निहित है। यह संस्कृति विभिन्न क्षेत्रों में अपनी गहरी छाप छोड़ते हुए, वैश्विक समाज को प्रेरित और समृद्ध करती है। भारतीय संस्कृति की व्यापकता और उसका विश्व पर प्रभाव इस बात का प्रमाण है कि यह न केवल भारतीय समाज की पहचान है, बल्कि यह मानवता की सामूहिक धरोहर का एक महत्वपूर्ण हिस्सा भी है।

निष्कर्षतः हमें अपनी भाषा, संस्कृति और साहित्य की रक्षा और प्रोत्साहन के लिए लगातार प्रयासरत रहना चाहिए। ये तीनों हमारी पहचान के स्तंभ हैं और इनके बिना हमारा अस्तित्व अधूरा है। भाषा और साहित्य ने मिलकर भारतीय समाज को एकजुट रखने और उसे उसकी जड़ों से जोड़ने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई है। इन सभी दृष्टिकोणों से स्पष्ट है कि भाषा, साहित्य और संस्कृति एक-दूसरे से गहरे जुड़े हुए हैं। साहित्य संस्कृति को जीवित रखने, उसे व्यक्त करने, और समाज में बदलाव लाने का सशक्त माध्यम है, जबकि संस्कृति साहित्य को विषयवस्तु, संदर्भ, और प्रेरणा प्रदान करती है। इस प्रकार, भारतीय परिप्रेक्ष्य में भाषा, साहित्य और संस्कृति के अंतर्संबंध न केवल एक दूसरे को पूरक हैं, बल्कि वे समाज की सामूहिक चेतना और पहचान को भी परिभाषित करते हैं। यह अंतर्संबंध न केवल अतीत को समझने में, बल्कि भविष्य को संवारने में भी महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है।

संदर्भ सूची :-

1. भाषा विज्ञान डॉ श्याम सुंदर दास, साहित्य सरोवर, 2019, पृष्ठ सं. 29
2. अशोक के फूल, हजारी प्रसाद द्विवेदी, लोकभारती प्रकाशन, 2007, पृष्ठ सं. 68
3. समय और संस्कृति, श्यामाचरण दुबे, वाणी प्रकाशन 2018, पृष्ठ सं. 75

एसोसिएट प्रोफेसर एवं विभाग अध्यक्ष
हिन्दी विभाग, कन्नूर विश्वविद्यालय, केरल
E-mail : preethamandeep@gmail.com. Mob: 828991810

कैलव्योति

दिसंबर 2024

आधुनिकता का पुनर्पाठ : नागार्जुन के उपन्यासों में

डॉ जी सुजीदा



हिन्दी साहित्य में आधुनिकता की पहल एक नई क्रांति बन कर उभरी। आधुनिकता से अभिप्राय एक नई सोच है। यह एक मूल्य है जो तार्किकता पर आधारित है। यह तार्किकता परीक्षण और विवेक पर काम करती है।

आधुनिकीकरण और आधुनिकतावाद की बात करें तो आधुनिकीकरण एक बहुआयामी विस्तृत और जटिल प्रक्रिया है जो परंपरा की विरोधी है तथा जिसमें औद्योगिकीकरण नगरीकरण, धर्म निरपेक्षता, स्वतंत्रता तथा विवेक का समावेश होता है और आधुनिकतावाद से तात्पर्य संस्कृति में बदलाव आना, संस्कृतियों का संक्रमण होना, नवीन विचारधाराओं का उदय होना जैसे डार्विन के सिद्धांत, कार्ल मार्क्स विचारधारा, कामू, नित्से की घोषणा आदि। सुधीश पचौरी के अनुसार संस्कृति में आधुनिकता, पुर्नजागरण, सुधार और ज्ञानोदय का नाम है, इसमें मानवजाति स्वायत्त हो जाती है। (सुधीश पचौरी - उत्तर आधुनिकता साहित्य विमर्श पृ-29)

आधुनिकता के तत्वों की यदि चर्चा करें तो वैज्ञानिक बुद्धिवाद, बौद्धिक जगत में क्रांतिकारी परिवर्तन, तार्किकता, धर्मनिरपेक्षता, स्वत्व की खोज, प्रगति की अवधारणा और परंपरा से मुक्ति शामिल है। अब सवाल यह है कि परंपरा क्या है, यह तय करना सरल भी नहीं है, द्वंद परंपरा और आधुनिकता में ही नहीं परंपराओं में भी होता है। संपूर्ण अतीत न तो परंपरा बन सकता है, न ही सभी परंपराएँ एक दिशा प्रदर्शित करती है।

आधुनिकता का अगला पड़ाव उत्तर आधुनिकता है। आधुनिकता की एक अगली कड़ी जो परिवर्तन की सीमा को लांघती है। यहाँ परिवर्तन की गति इतनी तीव्र है कि उसने समाज, संस्कृति के चिंतन को पूरी तरह रूपांतरित कर दिया है। कृष्णदत्त पालीवाल लिखते हैं - उत्तर आधुनिकतावाद हर तरह के केन्द्रवाद या सेन्ट्रिज्म को तोड़ता है और विकेन्द्रीयवाद के महत्व को प्रतिष्ठ करता है मूल बात यह है कि उत्तर आधुनिकता एकीकृत के बजाय विभिन्नता को बुनियादी सवाल मानता है और केन्द्र से परिधि की ओर चल पड़ता है। इसका नतीजा यह हुआ

कि दलित जनजातियाँ, नारी समाज समलैंगिक, स्त्री-पुरुष, हाशिए पर स्थित लोग, दलित प्रताड़ित, परिधि पर स्थित जातियाँ जिनकी पहचान या आवाज नहीं थी अब 'पावर शिफ्ट' के इस युग में अपनी पहचान, अपनी आवाज अपने वर्चस्व के नए समूह बनाकर जी तोड़ संघर्ष करने लगे। (कृष्णदत्त पालीवाल- उत्तर आधुनिकता और दलित साहित्य -पृ-21)

आधुनिकता के पुर्नपाठ को नागार्जुन के उपन्यासों में देखा जा सकता है। नागार्जुन के अब तक कुल दस उपन्यास प्रकाशित हो चुके हैं, रतिनाथ की चाची, बलचनामा, नई पौध, बाबा बटेसरनाथ, वरुण के बेटे, दुखमोचन, कुम्भीपाक, हीरक जयन्ती, उग्रतारा और जमनिया का बाबा। यहाँ रतिनाथ की चाची और वरुण के बेटे उपन्यास को लिया गया है।

आधुनिकता का प्रभाव- 'रतिनाथ की चाची' उपन्यास में आधुनिकता के प्रभाव को देखा गया है, कैसे नैतिकता में परिवर्तन आता है, कैसे संस्कृतियों का संक्रमण होता है। आज नहीं तो कल ब्राह्मण भी हल जोतेंगे। देख लेना। अंग्रेजी पढ़े लिखे ब्राह्मण प्याज, लहुसन खाते हैं। मुर्गी का अंडा खाते हैं (नागार्जुन रतिनाथ की चाची- पृ 56) रतिनाथ की प्रक्रिया खिल आती है। पहले वह मात्र संस्कृत पढ़ता था, लेकिन आधुनिकता के आते ही वह अंग्रेजी पढ़ने-लिखने लगा। हिन्दी भी वह सीखने लगा।

स्त्री विमर्श- उपन्यासों में स्त्रियों की स्थिति को बड़ी ही दयनीयता से दिखाया गया है। उपन्यास की प्रमुख पात्र गौरी जिन मानसिक यंत्रणाओं से गुजरती है वह भारतीय समाज की सड़ी-गली परंपरा का बेरहमी से भंडा-फ़ोड़ करती है। वह कहती है किसी भी युग में स्त्री को अमृत पीने का सुयोग नहीं मिला, पुरुष को अमृत पिलाकर स्वयं वह विषपान ही करती आई है (वही से- पृ 89) वही उपन्यास 'वरुण के बेटे' में भी मधुरी के साथ शादी के बाद मार-पीट होती है वह वहाँ से भाग आती है। नहीं अब वह कभी उस नशाखोर बुढ़े की लात-मार बर्दाशत करने नहीं जाएगी।

फिर से शादी कर लेगी किसी मेहनतकश जवान से बगैर मरद के कोई औरत अकेली जिंदगी नहीं गुजार सकती है क्या (वही से -पृ -111)

पारिस्थितिक विमर्श-उपन्यास में प्रकृति के स्नेह को दिखाया है। भिन्द पर चारों ओर बरगद, पीपल, पाकड, मौलश्री, आम और जामुन के पेड थे। वे गर्मी बरसात और जाड़े के दिन में चरवाहों और राहीगरो के माँ- बाप थे। अपनी शरण में आए हुए पशु-पक्षियों के लिए भी उनमें अपार ममता थी।कीड़े-मकौड़े तक उनकी स्नेह-सुधा से वंचित न थे। शुभकरपुर गाँव ऐसा ही था, प्रकृति के प्रेम से लदा, अब यह गाँव धीरे-धीरे बदल रहा था। उपन्यास वरुण के बेटे में भी प्रकृति शोषण को दिखाया गया है। गरोधर के भिंडो पर बाग थे, जिनमें आम, जामुन, कटहल, नीम, पाकड, सेमल, बरगद, पीपल और साहड के पुराने पेड थे। पिछले दो-तीन वर्षों के अन्दर दो तिहाई वृक्षों का सफ़ाया हो चुका था। (नागार्जुन-वरुण के बेटे-पृ 31)

दलित विमर्श- उपन्यास में दलित के शोषण पर चित्र खींचा गया है ,कुल्ली राउत,चमाइन आदि दलित वर्ग का प्रधिनिधितत्व करते हैं, दलितों की शोचनीय स्थिति पर अगर यह भी ब्राह्मण के पैदा हुए होते तो निश्चय ही इसके बदन पर फ़टे-पुराने कपडे न होते । हमारी जूठन खाकर हमारी पहिरन पहन कर इसके बच्चे पलते है, उन्हें कभी स्कूल और पाठशाला जाने का अवसर नहीं मिलता।क्या मरद क्या औरत इन लोगों का जीवन बडी जातवालों की मेहरबानी पर निर्भर है। (नागार्जुन रतिनाथ की चाची-पृ- 51)

उच्च कुल की पांखड प्रतिष्ठा- 'रतिनाथ की चाची' उपन्यास में उच्च कुल के एक परिवर्तन की घटना सामने आती है। परम्परा से आए ब्राह्मण कुल ने संस्कारों का जो ठेका ले रखा था, गौरी और उसकी माँ ने उन संस्कारों को परे कर दिया । गौरी विधवा है लेकिन वह मां बन जाती है। उसकी माँ संस्कारों की परवाह किए बिना,पाप- पुण्य का मोल किए बिना भ्रूण हत्या के लिए तैयार हो जाती है। इसपर चमारिन जो बच्चा गिराने में माहिर है कहती है - एक बात कहती हूँ माफ़ करना बडी जातवालों की तुम्हारी यह बिरादरी बडी मलिच्छ,बडी निष्ठुर होती है,मलिकाइन। हमारी

भी बहु-बेटियाँ रांड हो जाती हैं , पर हमारी बिरादरी में किसी पेट से आठ-आठ, नौ-नौ महीने का बच्चा निकालकर जंगल में फ़ेंक आने का रिवाज नहीं है। (वही से -पृ-24)

समाज में विधवा की स्थिति- उपन्यास में विधवा की हालत दयनीय है। काशी में आज भी विधवाओं की हालत में कोई सुधार नहीं आया है। शुभंकरपुर की विधवा गौरी की स्थिति शोचनीय है। अपने देवर से गर्भवती होने के कारण उस पर दुखों का पहाड टूट पडता है। विधवाओं को काशी में रखा जाता है, इस आश्रम में इन विधवाओं के साथ कुकर्म भी होता है। गौरी की माँ कहती है -बिटिया को मैं प्याज की तरह जमीन के अंदर दबाकर नहीं रख सकती,इसके चलते जो कुछ हो। जिस समाज में हजारों की तादाद में जवान विधवाएँ रहेंगी वहाँ यही सब तो होगा। (वही से-पृ-28)

पारिस्थितिक स्त्रीवादी विमर्श- पारिस्थितिक स्त्रीवादी विमर्श को भी इस उपन्यास के माध्यम से उकेरा जा सकता है। यह आधुनिकता के पुनर्पाठ का अगला पडाव है। इस विमर्श में स्त्री द्वारा मात्र प्रकृति को बचाने की जद्दोजहद ही शामिल नहीं है,उसमें संपूर्ण मानव जाति को बचाने की मांग शामिल है। यहाँ 'वरुण के बेटे' में मधुरी बाढ से पीडित लोगों की सहायता में लग जाती है। स्त्री का जरूरतमंदों की सेवा करना पारिस्थिति की स्त्रीवाद के अंतर्गत समाहित है। मधुरी के जिम्मे का काम था,सहायता कार्य में लगे हुए स्वयंसेवकों और बाहर से आए मेहमानों,नेताओं के लिए खाना व नाश्ता तैयार करना, खिलाना-पिलाना वितरित होने वाले अनाज की सफ़ाई, जरूरतमंद स्त्रियों तक अन्न, वस्त्र पहुँचाना और अपनी बस्ती के अंदर पानी में डूबे हुए घरों से सामान निकालने में औरतों की मदद करना (नागार्जुन-वरुण के बेटे-पृ-87), दूसरे उपन्यास 'रतिनाथ की चाची' में महामारी का प्रकोप देखा जा सकता है, इस समय उपन्यास की पात्र चाची सभी लोगों की सेवा करती है। चाची खुद बीमारी से जूझती है लेकिन वह दूसरों की मदद करने से नहीं कतराती। चाची का एक चुहिया के प्रति स्नेह भी पारिस्थितिकी स्त्रीवाद के रूप में देखा जा सकता है। उपन्यास से बेहोश हालत में देखकर चाची ने जरा अमृतधारा लगा दी थी, फिर क्या था चार दिन में वह चंगी हो गई और पहले के माफ़िक उछलने 'कूदने लगी' (नागार्जुन- रतिनाथ की चाची- पृ 133) चाची के इस रूप को प्रकृति के साथ

जोड़ा जा सकता है जैसे आषाढ में जब पहले-पहल किसी दिन मूसलाधार वर्षा होती है, तब जिस तरह धरती का सद्यः स्नात रूप निखर आता है उसी प्रकार चाची का शरीर लगता है। वही जयदेव की चाची का भी अपने सहजीवियों से लगाव है। एक में चाची का डेरा है। दूसरे में पंलग वगैरह है। तीसरे में धान, चावल, चूहा, झींगूर और नेवले रहते हैं। साथ में चाची के साथ कुंती नाम की सार्वजनिक कुंती और नीलो बिल्ली भी रहती है। स्त्री की ममता संपूर्ण सहजीवियों से परिपूर्ण है। वह सबके लिए स्नेहभाव रखनेवाली है। सबके प्रति चाची ममता रखती है। उसके द्वार से कभी कोई खाली हाथ नहीं लौटता - गाँव में भूला भटका कोई आ जाता है तो लोग उसे इस टोले में भेज देते हैं कि उमानाथ की माँ दो मुट्टी भात और कल्लू भर दाल तो आगन्तुक को खिला ही देगी। (वही से- पृ 88) दरअसल स्त्री ही संस्कृति की संवाहक है। वह भाषा को, संस्कृति को संजोए रखती है। मैथिल ब्राह्मणों का जिक्र इस उपन्यास में हुआ है। उनकी संस्कृति, भाषा, सभ्यता आज औरतों तक ही सीमित रह गई। याने औरतें जो आधी आबादी हैं, वे संस्कृति की विरासत को संभाले हुई हैं - आज से सैकड़ों वर्ष पहले कुछ मैथिल ब्राह्मण उधर जाकर बस गए। अब भाषा, वेश, शिक्षा आदि की दृष्टि से वे बिलकुल बंगाली हो गए। औरतों तक ही अपने क्षेत्र की संस्कृति, सभ्यता और भाषा सीमित रह गई। (वही से-पृ-78) मधुरी गढपोखर के पानी को बचाना चाहती है, वह पानी के लिए प्रतिरोध करती है मछुआ संघ जिंदाबाद, हक की लड़ाई जीतेगें, गढपोखर हमारा है, हमारा है। (वही से-पृ-118)

नागार्जुन के उपन्यासों में प्राकृतिक आपदाओं पर चर्चा हुई है, चाहे वह बाढ़ का आना हो या महामारी का आना जैसे उपन्यास में शुंभकरपुर में मलेरिया का आना और क्रिया कर्म की कौन कहे, लाश उठाकर ले जाने वाले नहीं थे वही दूसरी ओर वरुण के बेटे में भी बाढ़ की तीव्रता को दिखाया गया है बाढ़ का पानी देहातों में दूर-दूर तक घुस आया था। इधर-उधर बिखरे पड़े घरेलू सामान, शिशुओं की स्लाई, बड़े बच्चों की चीख, पुकार (नागार्जुन- वरुण के बेटे-पृ-84) वर्तमान में भी प्राकृतिक आपदाएँ मुँह बाए खडी हैं, आज भी मनुष्य आपदाओं की तकलीफों को झेल रहा है।

किसान विमर्श, बाल विमर्श, लोक संस्कृति, सभ्यता, गाँवों की जिन्दगी, आमों की किस्में आदि कई विषय इन उपन्यासों में जुड़ते चले जाते हैं आधुनिक भारतीय समाज में पत्रकार, लेखक, समाजसेवी, प्रकाशक, वकील, प्राध्यापक यानी कि बुद्धिजीवी कहे जाने वाले वर्ग के प्रति भी लेखक की दृष्टि बहुत कुछ आलोचनात्मक है। वैसे दिखा जाए तो नागार्जुन किसी अधूरी दुनिया के लेखक नहीं है, वे न ही आदर्शवादी हैं और न ही यथार्थवादी।

आधुनिकता का पुनर्पाठ बदलाव की ओर इशारा करता है। परिवर्तन या बदलाव ही जीवन का सत्य है। मानव यदि इतिहास की उपज है तो इतिहास निर्माता भी। अर्थात् परिस्थितियाँ ही उसे नहीं बदलती, वह भी परिस्थितियों को बदल डालने में सक्षम है। यह बदलाव केवल वस्तुजगत का न होकर व्यक्ति के आन्तरिक का भी होगा। नैतिक साहस और ईमानदारी जैसी भीतरी शक्तियों के बिना यह बदलाव अधूरा होगा और यही तथ्य नागार्जुन के उपन्यासों में समाविष्ट है।

संदर्भ ग्रंथ सूची-

1. सुधीश पचौरी -उत्तर आधुनिकता साहित्य विमर्श- पृ-29
2. कृष्णदत्तपालीवाल- उत्तर आधुनिकता और दलित साहित्य -पृ-21
3. नागार्जुन रतिनाथ की चाची- पृ 56
4. वही - पृ -89
5. वही -पृ -111
6. नागार्जुन-वरुण के बेटे-पृ -31
7. नागार्जुन- रतिनाथ की चाची-पृ- 51
8. वही -पृ-24
9. वही -पृ-28
10. नागार्जुन- वरुण के बेटे-पृ-87
11. नागार्जुन- रतिनाथ की चाची- पृ 133
12. वही - पृ- 52
13. वही - पृ -88
14. वही -पृ-78
15. वही -पृ-118
16. नागार्जुन- वरुण के बेटे-पृ-84

असिस्टेंट प्रोफेसर, हिन्दी विभाग
निर्मला कालेज, मुवाटुपुषा, केरल

केरलप्योति
दिसंबर 2024

गोवालपरिया लोकगीत : एक अनुशीलन

बर्णाली गोगोई



शोध सारांश : गोवालापारा पूर्वोत्तर के राज्य असम के पश्चिम प्रांत में अवस्थित जिला है। यह जिला भौगोलिक सीमा की दृष्टि से क्षुद्र होने पर भी संस्कृति की दृष्टि से अनेकता में एकता का समन्वय स्थल है। गोवालपारा जिला में निवास कर रहीं विविध जनजातियों ने गोवालपरिया संस्कृति तथा लोकसाहित्य के विकास में महत्वपूर्ण योगदान दिए हैं। गोवालपरिया लोकसाहित्य भी गोवालापारा संस्कृति की तरह समृद्ध है। भावाइया गीत, देवी-देवताओं से संबंधित लोकगीत, संस्कार से संबंधित गीत, उत्सव तथा पर्व से संबंधित लोकगीत, मालिता अथवा आख्यान गीत में विभाजित कर सकते हैं। गोवालपरिया लोकगीतों की रचना शुद्ध असमिया भाषा में न होने पर भी भाषा की दृष्टि से कामरूपी उपभाषा तथा पुरानी असमिया भाषा से समता देखने को मिलती है। जिस कारण से गोवालपरिया लोकगीतों को असमिया भाषा में रचित लोकगीतों से अलग नहीं किया जा सकता। भाषा की दृष्टि से भिन्नता देखने को मिलने के पश्चात भी विषयवस्तु की दृष्टि से असमिया लोकगीतों से कोई भिन्नता नहीं है। गोवालपरिया लोकगीतों में जनजीवन की स्पष्ट छवि देखने को मिलती है।

बीज शब्द : मालिता, लोक-साहित्य, लोक-गीत, भावाइया

डॉ. मीरा देवी गोवालपरिया लोकगीतों पर चर्चा करते हुए लिखती हैं- “गोवालपारा जिला लोकगीत चहकी। एइ लोकगीत समूह भालेखिनि बर्तमान प्रकाशित है। पूजा पातल आरु अन्यान्य आध्यात्मिक भावर गीत, उत्सव अनुष्ठानर गीत, मालिता जातीय गीत, प्रेम आरु आसक्तिर गीत, रङ रहइछर गीत, निचुकनि आरु खेलधेमालिर गीत आदि नानान श्रेणीर गीतेरे गोवालपरिया लोकगीतर भँराल मेटमरा।”¹ अर्थात् गोवालपारा जिला लोकगीतों से समृद्ध है। गोवालपरिया लोकगीतों के अधिकांश लोकगीत प्रकाशित हो चुके हैं। आध्यात्मिक लोकगीत, संस्कार से संबंधित लोकगीत, उत्सव-पर्व से संबंधित लोकगीत, प्रेम तथा आसक्तिके लोकगीत, लोरी आदि से गोवालपरिया लोकगीत

समृद्ध है। गोवालपरिया लोकगीत में भाषा तथा विषयवस्तु की दृष्टि से असमिया लोकगीतों और भाषा का प्रभाव देखने मिलता है। गोवालपरिया लोकगीतों की भाषा के बारे में लिखते हुए अतुल बस्वा लिखते हैं - “तार भाषा अवश्य उजनि असमर शुद्ध असमिया नहय, किंतु कामरूपीया उपभाषा आरु पुरणि असमिया भाषार लगत इयार निकट संबंध धरा परे। एइ गीत बिलाक असमिया भाषार अंतर्भुक्तगीत है थाकिव।”² अर्थात् गोवालपरिया लोकगीतों की रचना शुद्ध असमिया भाषा में न होने पर भी भाषा की दृष्टि से कामरूपी उपभाषा तथा पुरानी असमिया भाषा से समता देखने को मिलती है। जिस कारण से गोवालपरिया लोकगीतों को असमिया भाषा में रचित लोकगीतों से अलग नहीं किया जा सकता।

गोवालपरिया लोकगीतों को विषयवस्तु की दृष्टि से निम्न रूपों में विभाजित किया जा सकता है - 1. भावाइया गीत 2. देवी-देवताओं से संबंधित लोकगीत 3. संस्कार से संबंधित गीत 4. उत्सव तथा पर्व से संबंधित लोकगीत 5. मालिता अथवा आख्यान गीत।

1. भावाइया गीत : गोवालपरिया लोकगीतों में भावाइया गीतों का महत्वपूर्ण स्थान है। धुबुरी जिला के आस-पास प्रचलित भावाइया गीतों में प्रेम की प्रधानता है। भावाइया गीतों में दूसरे प्रेममूलक गीतों की तरह आध्यात्मिकता तथा धर्म का प्रभाव नहीं है। इन गीतों में प्रेम की सच्ची छवि देखने को मिलती है। इन लोकगीतों में अविवाहित कन्या की पीड़ा, अपने पति से दूर रहने के कारण पत्नी की विरह वेदना, राधा-कृष्ण का विरह, परकीया प्रेम आदि का सजीव वर्णन हुआ है। भावाइया गीतों में राधा-कृष्ण प्रेम, परकीया प्रेम, मैषाल प्रेम की अधिकता है।

भावाइया गीतों में अविवाहित कन्या की विरह वेदना का आधिक्य है। विवाह न होने के कारण पति के बिना अपने यौवन को पानी की तरह बहते हुए देखकर अविवाहित कन्या व्यथित है। वह अपनी वेदना को व्यक्त करने के लिए

कैलशप्रति

दिसंबर 2024

केवल रो सकती है। रोते समय शांत करने के लिए भी उसके पास कोई नहीं है। अविवाहित कन्या अपने प्रेमी तथा पत्नी पति से दूर रहने के कारण विरह की घड़ी में साथ देनेवाला कोई नहीं है। अपने प्रिय के अभाव में वे अपनी वेदना को गीतों के माध्यम से अपने प्रिय के पास पहुँचाना चाहती हैं। वे अपनी वेदना को गीतों के माध्यम से व्यक्त करती हैं। उसके लिए विवाह की अपेक्षा में समय व्यतीत करना असंभव हो गया है। वह सालों साल अपने विवाह की अपेक्षा में है। फिर भी उसकी शादी नहीं हो रही है। अपनी सखियों की शादी हो गयी है। परंतु उसके लिए कोई पति अब तक नहीं आया है। वह अपने होनेवाले पति की अपेक्षा में व्यथित है, जिसका वर्णन इस प्रकार है - “अ कि दैयाल रे/कार जन्य राखिचं जे सोनार जैवन /उरे भर युवती नारी कांदे/पालंकीते शुइया रे/उकि दैयाल रे।”³

इस तरह भावाइया गीतों में प्रेम विरह का सजीव वर्णन हुआ है। राधा-कृष्ण की विरह वेदना के माध्यम से भावाइया गीतों में प्रेम का वर्णन हुआ है। भावाइया गीतों में वर्णित राधा-कृष्ण का संबंध आध्यात्मिकता से नहीं है। वे केवल प्रेमी-प्रेमिका हैं। इन गीतों में विरह वेदना को रूप प्रदान करने के लिए कहीं पर कृष्ण-राधा की प्रीत का वर्णन है। भावाइया गीतों में वर्णित राधा-कृष्ण केवल प्रेम के लिए जीते हैं।

2. देवी-देवताओं से संबंधित लोकगीत : प्रत्येक समाज तथा संस्कृति में धर्म तथा धार्मिक आस्था से संबंधित अनेक लोकगीत प्रचलन में हैं। लोकसमाज में मान्यता है कि समाज में होनेवाली बीमारियों से लेकर आपदाओं के पीछे किसी न किसी देवी-देवताओं का प्रकोप होता है। वे देवी-देवताओं की संतुष्टि के लिए पूजा-पाठ का आयोजन करते हैं। इन पूजा-पाठ में देवी-देवताओं से संबंधित अनेक लोकगीत गाये जाते हैं। देवी-देवताओं की पूजा-अर्चना से संबंधित इन लोकगीतों को धार्मिक लोकगीत भी कहा जाता है। गोवालपरिया समाज में भी देवी-देवताओं से संबंधित अनेक लोकगीत प्रचलन में हैं। जिन्हें निम्न स्त्रों में विभाजित कर सकते हैं क. आइनाम ख. लक्ष्मी पूजा के गीत ग. मनसा पूजा के गीत

क. आइनाम : आइनाम अर्थात् देवी शीतला से संबंधित लोकगीत असमिया लोकगीतों के समान गोवालपरिया लोकगीतों में भी हैं। गोवालपरिया समाज में मान्यता है कि चेचक रोग का कारण देवी शीतला है। जिस कारण से देवी शीतला की संतुष्टि के लिए आइ सवाह का आयोजन किया जाता है। जिसमें देवी शीतला की संतुष्टि के लिए नाम प्रसंग किया जाता है। ताकि वे देवी शीतला के प्रकोप से बच सके।

“शितला आइर दुवारे जलछे रतन बाति/हा-हरि, आइ तोमार चरने धरि।/बसंत आइर दुवारे जलछे रतन बाति/हा-हरि, आइ तोमार चरने धरि।/लुति आइर दुवारे जलछे रतन बाति/हा-हरि, आइ तोमार चरने धरि।/माजु आइर दुवारे जलछे रतन बाति/हा-हरि, आइ तोमार चरने धरि।/चेमेरि आइर दुवारे जलछे रतन बाति/हा-हरि, आइ तोमार चरने धरि।/घाउली आइर दुवारे जलछे रतन बाति/हा-हरि, आइ तोमार चरने धरि।/खुजालि आइर दुवारे जलछे रतन बाति/हा-हरि, आइ तोमार चरने धरि।”⁴

इस लोकगीत में देवी शीतला के सभी रूपों का उल्लेख मिलता है।

ख. लक्ष्मी पूजा के गीत : गोवालपरिया लोकसाहित्य में लक्ष्मी पूजा से संबंधित लोकगीत भी प्रचलन में है। धन तथा ऐश्वर्य की देवी लक्ष्मी की संतुष्टि के लिए प्राचीन काल से ही लोग अनेक प्रयास कर रहे हैं। ताकि सदैव उनके परिवार पर देवी लक्ष्मी की कृपा दृष्टि बनी रहे। लक्ष्मी पूजा में देवी लक्ष्मी की महिमा का वर्णन मिलता है। देवी लक्ष्मी की संतुष्टि के लिए लक्ष्मी पूजा का आयोजन किया जाता है। जिसमें देवी लक्ष्मी की महिमा से संबंधित लोक गीत गाये जाते हैं।

“चारिया जले करे टलमल/शिलरे हातुरि मरे/ब्रह्मांडर भितरे अगनि ज्वलिछे/रामेसे निमाबा पारे/आगलति पातत बहिछे लक्ष्मी आइ छाटि/अ प्रभावते मारिछे छाटि/अ हाँहे खिलाखिलि/करे दुलादुलि/राइजर मंगल दखि/आइसकल लरिला हरिहे राम।”⁵

ग. मनसा पूजा से संबंधित लोकगीत :

गोवालपरिया लोकसमाज में भी मनसा पूजा से संबंधित लोकगीत प्रचलन में है। मनसा पूजा का आयोजन देवी मनसा की संतुष्टि के लिए किया जाता है। देवी मनसा की संतुष्टि के लिए आयोजित पूजा में मनसा पूजा से संबंधित लोकगीत गाया जाता है। समाज में मान्यता है कि मनसा देवी की पूजा से सर्प दोष से मुक्तिमिलती है। अपने परिवार तथा स्वजनों पर देवी मनसा की कृपा दृष्टि बनी रहने के लिए देवी मनसा की पूजा की जाती है। “घटला मुखनि तुले दिले काम कुंडली।/माथा उफुरणि तुले आने पुर्णघट खानि?/सुवर्ण पिठालि दिया देय आलिपन।/धान दुवौ अन्नपुष्प करिया स्थापन?”⁶

3. संस्कार से संबंधित लोकगीत : मनुष्य जीवन में संस्कारों का महत्वपूर्ण स्थान है। विवाह, जन्म, मृत्यु आदि मनुष्य जीवन के संस्कारों में से प्रमुख संस्कार हैं। संस्कारों में अनेक लोकगीत गाये जाते हैं। जिन्हें संस्कार से संबंधित लोकगीत कहा जाता है। साहित्य समाज का दरपन है तो लोक-साहित्य लोक-जीवन का मूलाधार है। समाज में प्रचलित सभी परंपराएँ, रीति-रिवाजों को लोक-साहित्य में स्थान दिया गया है। गोवालपरिया लोकगीतों में भी संस्कार तथा परंपरा, रीति-रिवाजों को स्थान दिया गया है। विवाह मनुष्य जीवन के महत्वपूर्ण संस्कारों में से एक है। विवाह में अनेक लोकगीत गाये जाते हैं। विवाह में गाये जाने वाले लोकगीतों के एक उदाहरण निम्नलिखित है -

“बरे बाबार मुखखान बांदर हेना देखुड/दधी आनेक बांदर बांधुड/माटिर बांदर देखिब सभार लोके/लागिब दरी दिब कन्यार दादायेके/बाद्यघंटा थाकिते अनेक शिव/बियात थाकिते बर रे।”⁷

4. उत्सव-पर्व से संबंधित गीत : प्रतेक समाज तथा संस्कृति के लोग अपने जीवन में अनेक त्योहार तथा पर्व मनाते हैं। उन पर्व तथा त्योहार से संबंधित अनेक लोकगीत समाज में प्रचलित हैं। जिसे उत्सव तथा पर्व से संबंधित लोकगीत कहा जाता है। गोवालपरिया समाज तथा संस्कृति में भी उत्सव तथा पर्व से संबंधित अनेक लोकगीत प्रचलन में हैं। उत्सव-अनुष्ठानर सैते जरित गीत-पदत गोवालपरिया

बाचिक कला निश्चितभावे चहकी। उत्सव अनुष्ठानर सैते सदा-सर्वदाइ गीत-पद जरित। (7, वही, 25) अर्थात् उत्सव तथा पर्व से संबंधित साहित्य की दृष्टि से गोवालपरिया लोकसाहित्य समृद्ध है। लोकगीतों का संबंध उत्सव तथा पर्व से सदा से ही है। असमिया समाज तथा संस्कृति की तरह गोवालपरिया समाज तथा संस्कृति भी कृषि से संबंधित है। जिस कारण से गोवालपरिया समाज में भी कृषि से संबंधित अनेक पर्व मनाये जाते हैं। जिसमें लोग अपने हर्ष-उल्लास को अभिव्यक्त करने के लिए गीतों की सहायता लेते हैं। गीतों के माध्यम से अपने मन की भावनाओं को अभिव्यक्तिप्रदान करते हैं। मागन-मागा पर्व में छोटे बालक-बालिकाएँ गाँव में घर घर जाकर नृत्य-गीत करके खाने के लिए माँगते हैं। मागन मागा पर्व में गाये जाने वाले लोकगीत का उदाहरण निम्नलिखित है- “अ बंदड श्रीरामेर चरणे/राजसभा चारिया राम/बनबासे जाय।/माथाय हात दिया सवे/करे हाय हाय।/भीषण जंगलेर माजे/नेदेखिया सूर्यर किरण/माथाय हात दिया सीता/कांदे कांदे घन घन।”⁸

5. मालिता अथवा आख्यानमूलक गीत : असमिया लोकसाहित्य की तरह ही गोवालपरिया लोकसाहित्य में भी आख्यानमूलक लोकगीतों को मालिता कहा जाता है। गोवालपरिया लोक-साहित्य में अनेक मालिताएँ प्रचलन में हैं। “पद्मादेवी जन्म, शितेली देवीर जन्म, आन आन देव देवी संपर्कीय गीत-पद, स्वर्ग-नारक-सप्त सागर आदि सृष्टि संपर्कीय काहिनी युक्त गीत-पद बाचिक परंपरात पोवा जाय।”⁹

गोवालपरिया लोकसाहित्य में प्रचलित आख्यानमूलक गीतों का एक उदाहरण सत्यपीर अवतार से संबंधित कथा है - “सत्यपर बोले राजा, शुनह बचन।/कलिकाले अवतार मुइ सत्य नारायण?/हिंदुर देवता मुछ्लमानर पीर।/घरे घरे मोर नाम करिल जिकिर?”

सत्यपीर अवतार से संबंधित कथा का मूल उद्देश्य है हिंदू-मुसलमान दोनों धर्मों के लोगों के मतभेद समाप्त करके एकता स्थापित करना। इस कारण से सत्यपीर अवतार से संबंधित कथा सत्यपीर को हिंदु के लिए नारायण तथा मुसलमान के लिए रहीम का रूप कहा गया है। ताकि

दोनों संप्रदायों में एकता स्थापित की जा सके। गोवालपरिया लोकगीतों में समाज में व्याप्त अनेकता को दूर करके एकता स्थापित करने का प्रयास देखने को मिलता है। जिस कारण से सत्यपीर की कथा में सत्यपीर को हिन्दू तथा मुसलमान दोनों संप्रदायों के लोगों के लिए एक समान बताया गया है।

निष्कर्ष : गोवालपरिया लोक साहित्य असमिया लोक-साहित्य का ही एक अंश है। फिर भी भाषा की दृष्टि से असमिया लोक साहित्य से भिन्न है। गोवालपारा जिला में भले ही अनेक जनजाति निवास करते हैं, फिर भी संस्कृति की दृष्टि से एकता देखने को मिलती है। गोवालपारा जिला में प्रचलित लोकगीतों को पाँच भागों में विभाजित कर सकते हैं। गोवालपारा जिला में प्रचलित भावाइया गीत लोकगीतों में महत्वपूर्ण है। इन गीतों में प्रेम की प्रधानता है। इन गीतों में वर्णित राधा-कृष्ण देवी-देवता न होकर केवल प्रेमी है, वे प्रेम के लिए जीते हैं। आख्यानमूलक गीतों में समाज से भेद-भाव दूर करके एकता स्थापित करने का भी प्रयास देखने को मिलता है। लोकगीतों की दृष्टि से गोवालपरिया लोकसाहित्य अत्यंत समृद्ध है।

संदर्भ :

1. गोवालपरिया लोकसंस्कृतित एभुमुकि, भवेश दास, बीणा लाइब्रेरी, पृ 37
2. गोवालपरिया लोक संस्कृति, द्विजेन नाथ, बनलता प्रकाशन, पृ 177
3. गोवालपरिया लोकगीतर विचार, सं. पदुमी गोगोई, साहित्य अकादमी, पृ 4
4. वही, पृ 14
5. वही, पृ 15
6. वही, पृ 16
7. वही, पृ 36
8. वही, पृ 26
9. वही, पृ 39
10. वही, पृ 39

शोधार्थी, हिंदी विभाग
मिज़ोरम विश्वविद्यालय, ऑइजल

भाषा दिवस पर विशेष

**शायद...कविवर* के चिंतन
आतिरा धनिष्ठा**



किसी ने कुछ सवाल उठाए
मेरे अंदर की साहित्य प्रेमी
जवाब देने पहुँची अदालत।

भला भारतीय भाषाओं में
ऐसा भी क्या है?
भाषाओं का है जलसा यहाँ,
बस उन्हीं का तो है जलवा यहाँ।

क्यों भला मिलकर रहते हैं सभी
जब कि कितने अलग हैं सब
एक दूसरे से?

ज़रा गौर से देखना प्यारे,
हम दिखते अलग ज़रूर हैं
पर हमारी विचारधारा की नींव एक है।

तुम्हारी भाषाएँ कितनी अलग हैं,
तुम लोग आपस में बतियाते कैसे हो?
सुनो प्यारे ज़रा पढ़कर,
देख हमारे साहित्य को
विज्ञान भी कहेगा
समानता तो भरपूर है यहाँ।

तुम आपस में क्यों नहीं लड़ते,
क्या तुम्हें लडना नहीं आता?
सुनो मूर्ख हम सिर्फ अन्याय से लडते हैं।
हमारे रगों में भारत का खून दौड़ता है,
और हम माँ से गहारी नहीं करते।

*(कविवर - सुब्रह्मण्य भारती)

एम.ए. छात्रा
महात्मा गाँधी कॉलेज, तिरुवनंतपुरम

‘विटामिन जिंदगी’ आत्मकथा में व्यक्त विकलांग पीड़ा

डॉ दीपक कुमार

ललित कुमार द्वारा लिखित आत्मकथा ‘विटामिन जिंदगी’ विकलांगों के जीवन और उनकी कठिनाईयों से अवगत करवाने का एक जीवंत दस्तावेज है। विकलांग मात्र एक शब्द नहीं बल्कि पीड़ा है जिसका दंश एक विकलांग व्यक्ति ताउम्र भोगता है। प्रस्तुत आत्मकथा में व्यक्त पीड़ा केवल ललित कुमार की पीड़ा नहीं है बल्कि पूरे भारत के विकलांगों की पीड़ा है। भारत देश में विकलांगता को अभिशाप माना गया है, या पापों की सजा, भाग्य का लेख, कर्मों का भोग या जैसी करनी वैसी भरनी आदि। सामान्यतः विकलांगता को बेचारगी का पर्याय माना जाता है और इस सम्बंध में एक विकलांग की जो भी सहायता की जाती है वह मात्र पुण्य प्राप्त करने के लिए की जाती है। इस देश में विकलांगों से पूर्व स्त्रियों और निम्न जाति के लोगों से हमेशा अन्याय होता रहा है फिर विकलांगों की तो बात ही क्या? यद्यपि ऋषि अष्टावक्र, शुक्राचार्य, जायसी, सूरदास, राणा सांगा, रणजीत सिंह, रवीन्द्र जैन, राजेन्द्र यादव, प्रभा शाह, बाबा आम्टे, हेलन केलर, एडीसन, स्टीफन हाकिंस, रूजवेल्ट आदि ने विकलांगता के बावजूद जो उपलब्धियाँ अर्जित की हैं, उनसे सारा विश्व भली-भाँति परिचित है। किन्तु इन सबके बावजूद उन्हें नजरअंदाज किया जाता है व हिकारत की दृष्टि से देखा जाता है।

विटामिन जिंदगी आत्मकथा में नायक ललित कुमार के साहस और धैर्य की कहानी है जो बचपन में ही पोलियो जैसी गंभीर बीमारी से ग्रस्त होकर भी जिंदगी की जंग जीतता है और उसके हौसलों को पंख देने का काम करते हैं उसके परिवार वाले माँ, पिता, भाई आदि। घिसटकर चलना, लड़खड़ा कर बार-बार गिरना, उठना चलना और फिर अंत तक चलते रहना। समाज का हर माँ-बाप चाहता है कि उसकी संतान स्वस्थ व सुंदर हो लेकिन प्रकृति माँ के आगे किसी की नहीं चलती। यहाँ प्रकृति ने ललित को चुना था। आर्थिक दृष्टि से कमजोर होते हुए भी ललित के

परिवार वालों ने उसके लिए जो अथक प्रयास किए उन्हें देखकर ऐसा लगता है कि यदि प्रत्येक विकलांग के परिवारजन ऐसे हों तो उनकी आधी पीड़ा तो वैसे ही समाप्त हो जाएगी। दूसरा विकलांगों के प्रति समाज का नजरिया बदलने की आवश्यकता है। विकलांग को लोग भिन्न-भिन्न चिढ़ाने वाले नामों से पुकारते हैं जो उसके हृदय को विदीर्ण कर देते हैं। उसको हीन दृष्टि से देखना व उसकी सफलता का उपहास करना या विकलांगता के कारण दया से प्रदान की गई समझना भी उनके साथ बड़ा अन्याय है। बारहवीं कक्षा के विदाई समारोह में जब ललित को सर्वश्रेष्ठ छात्र का पुरस्कार दिया जाता है तो एक छात्र ऐसी टिप्पणी करता है - “अब इसे तो ये इनाम इसलिए मिला है क्योंकि ये लंगड़ा है।”¹ यह उक्तिललित के हृदय को विदीर्ण कर देती है। वह कहता है कि बारह वर्षों की बेहद कड़ी मेहनत के बाद आज मुझे सर्वश्रेष्ठ होने का खिताब मिला था, लेकिन समाज की निगाह में इस खिताब और खिताब को हासिल करने वाले व्यक्ति और उनके द्वारा लांघी गई हजारों बाधाओं का कोई अर्थ नहीं था। कोई विकलांग व्यक्ति भी किसी उँचाई को छू सकता है ऐसी कोई कल्पना मेरा समाज कर ही नहीं सकता।”²

इस देश में घूरने की प्रवृत्ति सबसे प्राचीन है। सुन्दर स्त्री और विकलांग तो इस दुष्प्रवृत्ति का आरम्भ से ही शिकार होते आए हैं। वे तब तक घूरे जाते हैं जब तक सामने वाला देखने वाले की आँखों से ओझल नहीं हो जाता। यह प्रवृत्ति इस देश के लोगों की मानसिक विकलांगता को दर्शाती है जिसका विश्लेषण ललित कुमार ने अपनी आत्मकथा में गहनता से किया है।

सामान्यतः विकलांगों को बेचारा, मजबूर या असहाय कह दिया जाता है किंतु ये शब्द उसे कितनी पीड़ा देते हैं, इसका अनुमान भी कठिन है। ‘बेचारा’ शब्द समानता सूचक नहीं बल्कि अक्षम समझने का प्रमाण है। आत्मकथा

में ललित कुमार को महिला कान्स्टेबल द्वारा बार-बार बेचारा शब्द प्रयोग करने पर बहुत शर्मिंदगी का अनुभव होता है- “उस महिला कान्स्टेबल ने न जाने कितनी बार मुझे बिचारा बताया। यह महिला कान्स्टेबल इतनी जोर से बिचारा-बिचारा किए जा रही थी कि वहां मौजूद अन्य लोगों ने मुझे ताकना शुरू कर दिया यह सब बहुत बुरा लगता है। शर्मिंदगी होती है और दुख होता है - लोगों की सोच पर।”³ ललित जब अध्यापक से जगन की शिकायत करता है तो अध्यापक जगन को डांटने की बजाय कहते हैं - “यह बेचारा तो पहले ही भगवान का सताया हुआ है, इसे और तंग क्यों करते हो?”

हमारा सामाजिक वातावरण विकलांग लोगों को ध्यान में रखकर डिजाइन नहीं किया गया है। प्रकृति विकलांग बनाती है किंतु हमारा समाज व्यक्तिको अक्षम बनाता है। यदि समाज चाहे तो विकलांगजन के जीवन को बेहतर बनाया जा सकता है। हमारा समाज यह नहीं समझ पाता कि जूते, छतरी और चश्मा उसी तरह की सहायक वस्तुएँ हैं, जिस तरह की वस्तु वैशाखी, व्हीलचेयर या नेत्रहीन की छड़ी। यह केवल समझ का फेर है कि लोगों को चश्मा पहने कोई व्यक्तिबुद्धिजीवी लग सकता है तो वहीं बैसाखी प्रयोग करने वाला व्यक्तिबेचारा लग सकता है जबकि ये दोनों भिन्न दर्जे की शारीरिक विकलांगता के शिकार हैं। बच्चों को चिड़ियाघर ले जाने की घटना से ललित आज भी दुखी है। अध्यापक द्वारा ललित को चिड़ियाघर ले जाने से मना करने पर वह दुखी होता है और सोचता है - “काश! उसे भी चिड़ियाघर ले जाया जाता तो बहुत खुशी होती! तुम नहीं, तुम रहने दो, तुम चल तो पाओगे नहीं। तुम रहने दो।”⁵ एक हफ्ते से वह जिसकी आस लगाए बैठा था, वह पल भर में ही अध्यापक के वाक्य ने तोड़ दी।

यदि अमेरिकी वैज्ञानिक डॉ. जोनाम एडवर्ड सॉक ने पोलियो के टीके की खोज न की होती तो पोलियो को लेकर जो सुधार दिखाई पड़ते हैं, वह स्थिति भारत जैसे देश में तो शायद कभी नहीं आती क्योंकि यहाँ हमेशा डॉक्टर

ईलाज की जगह झाड़-फूंक पर ज्यादा वि ग्रास रहा है। ललित को भी ऐसे ही ओझे के पास ले जाया जाता है जिसके संदर्भ में वे लिखते हैं - “पैंट उतार दिए जाने के बाद उस व्यक्तिने पास रखी प्लेट में से गेंदे का एक फूल उठाया और उस फूल को मेरे पैरों पर दो तीन बार फिराया। चलो ईलाज हो गया, बच्चे को पैंट पहनाओ ठीक हो जाएगा।”⁶ इस संदर्भ में मेरा भी एक अनुभव है। मुझे याद है कि मेरी विकलांगता को ठीक करवाने हेतु मुझे कीचड़ से भरे जोहड़ में मलमलकर नहलाया गया किंतु आज तक उस कीचड़ का कोई असर दिखाई नहीं पड़ा।

इस आत्मकथा को पढ़ते हुए मेरी आंखों से आँसू शायद इसलिए नहीं निकले क्योंकि मैं स्वयं इस पीड़ा को भोग चुका हूँ। मेरी विकलांगता ने भी मुझे जीवन में कई ऐसे अनुभव कराए जो लेखक ललित कुमार को हुए थे। विकलांगों के लिए प्रचलित अपशब्दों से मैं पूरी तरह परिचित हूँ किंतु उस दर्द की पीड़ा को एक विकलांग के अतिरिक्त और कोई महसूस नहीं कर सकता।

निःसंदेह विकलांगता और समाज के रवैए के विरुद्ध लड़ाई केवल अथक परिश्रम और असीम मनोबल से जीती जा सकती है। विकलांगों के लिए बेचारी नहीं बल्कि बराबरी के व्यवहार की आवश्यकता है।

संदर्भ सूची

1. ललित कुमार: विटामिन जिंदगी, पृ. 19
2. वही, पृ. 19
3. वही, पृ. 234
4. वही, पृ. 69
5. वही, पृ. 81
6. वही, पृ. 42

गाइड का नाम - डॉ. वेदव्रत शर्मा

सहायक प्रोफेसर हिंदी
राजकीय महाविद्यालय भेरियाँ
पेहवा, कुर्क्षेत्र, मोबाईल - 8708861229

केरलप्योति
दिसंबर 2024

लता अग्रवाल की कहानी 'सूनी कोख' में चित्रित नारी समस्याएँ

लावण्या बालकृष्णन



डॉ लता अग्रवाल का जन्म छब्बीस नवम्बर उन्नीस सौ छियासठ में महाराष्ट्र के सोलापुर जिले में हुआ था। पिताजी जवाहरलाल गुप्ता और माताजी कमलादेवी गुप्ता हैं। पिताजी रेलवे में काम करते थे। उन्नीस सौ अस्सी में रेल दुर्घटना के कारण पिता की मृत्यु हो गई थी। लताजी अपने पिताजी की प्यारी बेटा थी। पिताजी की मृत्यु के बाद अनेक कठिनाइयाँ सहनी पड़ी थीं। इन्हीं कारणों से लताजी ने लिखना शुरू किया था। उनके पाँच कहानी संग्रह, 'नीला मलहम', 'सिन्दूर का सुख', 'ब्रह्मास्त्र', 'साँझी बेटियाँ', 'हज़ार दिनारा लौंडा' आदि हैं। उन्होंने उपन्यास, कविता संग्रह, बाल साहित्य, लघु कथा संग्रह, समीक्षा आदि भी लिखे हैं। उनकी कहानियों में नारी की समस्याओं का अधिक चित्रण हुआ है। उनकी कहानियाँ पढ़ते वक्त पाठक के मन में ज़रूर कोई संदेश मिलता है। उनकी कहानियों में भ्रूणहत्या, अकेलापन, अवैध संबंध, प्यार के नाम पर धोखा, बालविवाह, दहेजप्रथा, वेश्यावृत्ति, एड्स की समस्या, वृद्ध समस्या, एसिड अटैक आदि नारियों की विभिन्न समस्याओं का चित्रण किया गया है। लता अग्रवाल की कहानियों को पढ़ने से पाठक को यह लगता है कि उन्होंने सच्चे ढंग से यथार्थवाद का चित्रण किया है। उनकी कहानियों में स्त्री विमर्श का हर क्षेत्र दिखाई देता है, चाहे स्त्री का अपना अंतर्द्वंद्व हो, पारिवारिक संघर्ष हो, सामाजिक विसंगतियों, राष्ट्रीय और अंतर्राष्ट्रीय स्त्री से जुड़े सभी मुद्दे उन्होंने अपनी कहानियों में पिरोए हैं।

भ्रूणहत्या करना बहुत बड़ा पाप और जुर्म है। चाहे सामाजिक दृष्टि से देखे या मानवीय दृष्टि से, भ्रूणहत्या करना बहुत बड़ा दुष्कर्म ही है। लाखों कोशिश करने के बावजूद सामाजिक सज़ा से बच सकता है। लेकिन ईश्वर के सामने कोई व्यक्ति न बच सके। यह सच है कि हम किसी व्यक्ति को जीवनदान प्रदान नहीं कर सकते, लेकिन किसी व्यक्ति का जीवन का अपहरण करने का हक़ भी हमें नहीं है। गर्भ में पल रहे शिशु की पहचान भ्रूणटेस्ट यानि अल्ट्रा साउंड स्कैनिंग करवाकर पता चलता है कि पेट में लड़का है या लड़की। आज की नारी बहुत शिक्षित और आत्मनिर्भर है।

विभिन्न ऊँचे पद में काम करनेवाली भी है। राजनीतिक, साहित्यिक, विज्ञान के क्षेत्र में सराहनीय पद पर होकर भी परिवार में बहुत कम स्थान मिलता है क्योंकि भारतीय समाज पुरुष प्रधान है। आज स्त्री ही स्त्री का शत्रु है और पुरुष वर्ग के स्वभाव में कोई परिवर्तन नहीं आया है। बेटा पैदा होने पर माँ-बाप बहुत दुःखी हो जाते हैं और बेटा पैदा होने पर बहुत खुश हो जाता है। भ्रूणहत्या के अनेक कारण होते हैं। मदर टेरेसा ने कहा है कि- "हम ममता के तोहफ़े को नहीं मिटा सकते। स्त्री और पुरुष के बीच कुदरती समानता खत्म करने के लिए हिंसक हथकंडे अपनाने से समाज पराभव की ओर बढ़ता है।" महर्षि दयानंद ने कहा- "जब देश में महिलाएँ सुरक्षित नहीं होंगी और उन्हें उनके गौरवपूर्ण स्थान पर प्रतिष्ठित नहीं किया जाएगा, तब वह समाज, परिवार और राष्ट्र का निर्माण नहीं हो सकेगा।" हमारे देश में लड़कियों का सुस्वागत करना चाहिए जैसे : "गूँजे किलकारी, न कर गम/फैलेगा प्रकाश, छंटेगा तुम/न घोंट गला कन्या का/बजा थाली, कर सुस्वागतम"³

'सूनी कोख' कहानी की नायिका का नाम ज्योत्सना है। वह पढी लिखी कामकाजी औरत होने के बावजूद भ्रूणहत्या का शिकार हो जाती है। कहानी की शुरुआत में ज्योत्सना डॉ.मदान से मिलती है। ज्योत्सना डॉ.मदान से दस-ग्यारह सालों से परिचित है। पेट में बहुत दर्द के कारण ज्योत्सना डॉक्टर से मिलती है। सारा टेस्ट करने के बाद पता चला कि ज्योत्सना के गर्भाशय में ज़्यादा इन्फेक्शन व्यापित होने के कारण जल्दी ही गर्भाशय का ऑपरेशन करना पड़ता है। ज्योत्सना जयेश को फोन लगाकर बहुत जल्दी आने को कहती है। घर आकर ज्योत्सना बहुत रोई। ज्योत्सना का दुःख कितना गहरा और तीव्र है, यह सिर्फ वह ही जानती है। ज्योत्सना अपने अतीत के बारे में सोचने लगी थी। ज्योत्सना एम.कॉम अंतिम वर्ष में बैंक में पी.आर.ओ पोस्ट का फॉर्म भरने लगी थी। एम.कॉम करने के बाद ज्योत्सना की शादी सहारनपुर के बलदेवजी के बेटे जयेश से हुआ था। जयेश के परिवार में माँ दुर्गेश्वरी देवी के

अलावा भाई उमेश और बहन नंदिनी भी रहते थे। जयेश शिक्षित लड़का है। अचानक बाबूजी के दिल का दौरा पडा था। बाबूजी को व्यापार में बहुत नष्ट हुआ था, इसलिए दूसरों से पैसा माँगना पडा था। अचानक बाबूजी की मृत्यु हो जाती है। अब पूरा दायित्व जयेश के ऊपर आ गया था। एक दिन ज्योत्सना ने जयेश के साथ बहुत प्यार से कहा कि “मेरी मानो जयेश! एक बच्चा घर में आ जाने दो, देखना घर की काया ही पलट जाएगी, सारी खामोशी रौनक में बदला जाएगी।”⁴ जयेश को यह सुनकर बहुत गुस्सा आ गया। जयेश एक अच्छे भाई और बेटे बन पाए लेकिन वह कभी भी एक अच्छे पति नहीं बन पाया। अपनी पत्नी की भावनाओं और इच्छाओं का ज़रा भी ख्याल नहीं रखता था। सभी लोग जयेश पर आश्रित थे। एक दिन ज्योत्सना के पिताजी आकर बोले कि “ज्योत्सना तुमने जो बैंक के लिए पी.आर. ओ. का इम्तिहान दिया था उसमें तुम पास हो गई हो अब बस इंटरव्यू बाक्री है, यदि उसमें सिलेक्शन हो जाता है तो तुम्हारा जॉब पक्का है बेटा।”⁵ इंटरव्यू में पास हुई और सिहोर की बैंक में उसे नौकरी भी मिल गई थी। जयेश के परिवारवालों के लिए ज्योत्सना सिर्फ सोने के अंडे देनेवाली मुर्गी के समान है। एक दिन ज्योत्सना को बैंक में चक्कर आने लगी थी। ज्योत्सना माँ बननेवाली है। वह सोचने लगी कि आज की हालत में वह एक बच्चे को अच्छी तरह देखभाल कर सकती थी। वह भी काम करके पैसा कमाती है। लेकिन जयेश को इस बात का पता चला तो वह ज़बरदस्ती ज्योत्सना को डॉक्टर मदान के पास ले गया। जयेश ने कहा कि “डॉक्टर क्या कोई ऐसी दवा या इंजेक्शन नहीं जिससे इस गर्भ को गिराया जा सके?”⁶ यह सुनकर दोनों चौंक पड़े। तुरंत ही जयेश ने कहा कि वरना फिर - ऑपरेट करके बच्चा गिरवा दीजिए। लेकिन जयेश की बातें सुनकर डॉक्टर ने उन्हें बहुत समझाने की कोशिश की थी। पहले बच्चे के साथ ऐसा करना ठीक नहीं है। लेकिन फिर भी जयेश अपने फैसले में अटल रहा। ज्योत्सना शिक्षित, आत्म निर्भर होकर भी जयेश के हाथों की कठपुतली थी। भारतीय स्त्रियों को एक अच्छी पत्नी बनने के लिए अपने पति की आज्ञा का पालन करना चाहिए। ज्योत्सना अपने बच्चे को जन्म देना चाहती है। लेकिन जयेश को देखकर ज्योत्सना बहुत डर जाती है। इस तरह जयेश की इच्छा के अनुसार ज्योत्सना ने गर्भपात किया था।

महीने पर मिलते वेतन में अपनी आवश्यकता के लिए कुछ रूपए निकालकर बाकी सब जयेश को देना पड़ता है। ज्योत्सना दो बार गर्भवती बन चुकी थी। लेकिन कंस पति ने अस्पताल ले जाकर उसका भ्रूण हट्ट्या किया था। डॉक्टर ने कहा है कि बहुत जल्दी ही गर्भपात्र निकालना है। इसलिए ज्योत्सना फोन पर जयेश को इन्फॉर्म किया था। जयेश ने ज्योत्सना की माँ बनने के सपने का कत्ल किया था। जयेश पति के रूप में संपूर्ण पराजय है। सभी बातें जानने के बाद भी जयेश में किसी प्रकार के भेदभाव नहीं हुआ। जयेश ने ज्योत्सना को भोपाल का एक अस्पताल में ले जाकर ऑपरेशन करवाया था। डॉक्टर ने तीन महीने विश्राम करने को कहा था। इसलिए जयेश उसे सहारनपुर ले आया। वहाँ एक कमरे में लाश के समान विश्राम किया था। एक दिन साँसू माँ की एक सहेली हालचाल पूछने के लिए आई। साँसू माँ ने कहा कि एक औलाद होते तो जयेश का खानदान पूरा हो जाता। दोनों की बातचीत के बीच में ऐसा कहा गया है कि ज्योत्सना को अब तक औलाद इसलिए नहीं हुआ है क्योंकि उसकी कोख ही बाँझ है। यह सुनकर ज्योत्सना को बहुत वेदना हुई। वह चिल्लाकर बोली कि उसकी कोख बाँझ नहीं है। वह बच्चे को जन्म देना चाहती थी। लेकिन जयेश और उसके परिवारवालों के लिए ज्योत्सना मातृत्व है। ज्योत्सना ने स्वयं अपनी कोख का अधिकार दूसरों को दे दिया था। जयेश की बातों का पालन न करती तो आज ऐसी बुरा हालत नहीं आई होती।

ज्योत्सना शिक्षित, आत्मनिर्भर और नौकरी पेशेवाली औरत थी। उसके साथ इतना सब कुछ होकर भी पति के अत्याचारों को चुप होकर सहती है। हर नारी की सपना है बच्चे को जन्म देना यानि माँ बनना। उसी तरह ज्योत्सना को भी अत्यधिक इच्छा थी माँ बनने की, लेकिन तीन बार पति भ्रूणहट्ट्या करने में मज़बूर करता है। भारतीय नारी होने के नाते पति की सारी दुष्प्रवृत्तियों को चुपचाप झेलती है।

आज नारी का एक हद तक विकास हुआ है। लेकिन हम यह नहीं कह सकते कि आज सम्पूर्ण नारी जाति का विकास हुआ है। उसके पीछे कई कारण हैं। प्रस्तुत कहानी की पात्र ज्योत्सना इन कारणों में कुछ का प्रतिनिधित्व करती है। हम कह सकते हैं कि कई लड़कियाँ साक्षर तो हैं लेकिन शिक्षित नहीं हो पाई हैं। ज्योत्सना पढी लिखी है। उनके पास डिग्री है, वे नौकरी भी कर रही हैं,

प्रश्नोत्तरी

डॉ. रंजीत रविशैलम



1. 'विमली' किसकी कहानी है?
2. 'शहर में घूमता आइना' किसका उपन्यास है?
3. सक्रिय कहानी आंदोलन का सूत्रपात किसने किया?
4. 'उत्सव पुरुष श्री नरेश मेहता' शीर्षक जीवनी की रचयिता कौन है?
5. 'अवस्थानुकृति: नाट्यम' सूत्र के रचयिता कौन है?
6. 'सुनहला साँप' मनोवैज्ञानिक कहानी के रचयिता का नाम क्या है?
7. 'मैं एक बेरोजगार आदमी' किस विधा की रचना है?
8. 'लतायफ-इ-हिंदी' किसकी रचना है?
9. विश्नुई संप्रदाय की स्थापना किसने की?

10. 'जब ते प्रीति श्याम ते कीनी' किसकी रचना है?
11. 'भक्तन को कहा सीकरी सों काम' - किसकी पंक्ति है?
12. 'वृत्त तरंगिणी' नामक ग्रंथ के रचयिता कौन है?
13. 'चतुर्वेदी जी की रचनाओं में देश के प्रति गंभीर प्रेम और देश-कल्याण के लिए आत्मोत्सर्ग की उत्कट भावना दिखाई देती है' - किसका कथन है?
14. 'हम विषपायी जनम के' किसकी काव्य कृति है?
15. 'मादा कैक्टस' किसकी नाट्य कृति है?
16. 'चीड़ों पर चाँदनी' किसकी रचना है?
17. 'शब्द और कर्म' किस विधा की रचना है?
18. 'इंद्रप्रस्थ में गिद्ध' किसकी काव्यकृति है?
19. 'किशनगढ के अहेरी' किसका उपन्यास है?
20. 'एकतारा' किसका उपन्यास है?

उत्तर: पृष्ठ 51

डिग्री के नाम पर। लेकिन शिक्षित माने उचित-अनुचित का ज्ञान वह नहीं कर पायी, निर्णय भी वही तय नहीं कर पायी हैं। ज्योत्सना पढी लिखी है संयोग से उसे नौकरी भी मिली है। किन्तु वह घरवालों के सामने अपनी इच्छा कबूल नहीं कर पाती हैं, डरकर मुकाबला नहीं कर पाती है। पति से कह नहीं पायी कि अपने बच्चों की परवरिश कर सकती है। इसलिए वह गर्भपात नहीं कर पाएगी। समाज में ऐसी लड़कियाँ भी हैं, जिन्हें बचपन से पति-परायणता की और ससुराल की दहलीज पर कदम रखना और मरने के बाद ही वहाँ से निकलना जैसी घुड़ी पिलायी जाती है। मतलब बचपन से शिक्षा देती है कि साँस-ससुर, पति आदि की सेवा करनी चाहिए। इस तरह वे अंध भक्तिन की तरह उनकी सेवा में लगी रही हैं।

संदर्भ

1. हक्र गढ़ती औरत, संपादक अंजु दुआ जैमिनी, कल्याणी शिक्षा परिषद् प्रकाशन, दरियागंज नई दिल्ली, संस्करण-प्रथम. 2011 पृ.सं. 23
2. वही पृ.सं. 23

3. वही पृ.सं. 24

4. नीला मलहम, संपादक लता अग्रवाल, विकास प्रकाशन, कानपुर संस्करण-प्रथम पृ.सं. 146

5. वही पृ.सं. 147

6. वही पृ.सं. 148

7. वही पृ.सं. 148

सहायक ग्रन्थ सूची

1. हक्र गढ़ती औरत, संपादक अंजु दुआ जैमिनी, कल्याणी शिक्षा परिषद् प्रकाशन, दरियागंज नई दिल्ली, संस्करण-प्रथम. 2011
2. नारी समस्या और समाधान, संपादक डॉ. सुधा सिंह, हरबंस एंड सन्स प्रकाशन, नई दिल्ली
3. नीला मलहम, संपादक लता अग्रवाल, विकास प्रकाशन, कानपुर संस्करण-प्रथम

शोध निदेशक: प्रो(डॉ) षीलाकुमारी एल

शोधार्थी, यूनिवर्सिटी कॉलेज
तिरुवनंतपुरम

कैल्योति

दिसंबर 2024

‘बीज से फूल तक’ कविता संग्रह में मृत्युबोध प्रिन्सी मात्यु



मृत्युबोध एक भावनात्मक दर्द है जो व्यक्ति तब अनुभव करता है जब कोई प्रियजन या व्यक्ति चला जाता है। मृत्यु से जुड़ी कविताएँ केवल मृत्यु पर केंद्रित नहीं हैं। वे ऐसी कविताएँ भी हैं जो मृत्यु से परे जीवन पर केंद्रित हैं। अपने लेखन द्वारा नयी चेतना प्रदान करने वाले एकांत श्रीवास्तव को हिंदी साहित्य जगत में महत्वपूर्ण स्थान प्राप्त है। उनकी कविताओं में गहरी संवेदना, सौंदर्य तथा सोच के दर्शन सर्वत्र व्याप्त हैं। संवेदना के साथ मानवीय कसृणा भी तरल होकर उनकी कविताओं में सहज प्रवाहित है। मनुष्य दर्पण में अपना प्रतिबिंब देखकर अपनी छवि का मूल्यांकन करता है। उसी प्रकार समाज अपना प्रतिबिम्ब साहित्य में देखता है और उसी आधार पर अपना मूल्यांकन करता है। इसी कारण साहित्य को समाज का दर्पण कहा गया है। साहित्य गहरा समुद्र है जिसके गर्भ में बहुमूल्य रत्नों का भंडार है। परन्तु उसे वही प्राप्त कर सकता है जिसमें संवेदनशीलता हो। इस साहित्य-सागर के ऐसे ही अन्मोल रत्न हैं एकांत श्रीवास्तव।

‘बीज से फूल तक’ की कविताओं में एकांत श्रीवास्तव ने अपनी काव्यात्मक ऊँचाई को स्पर्श किया है। ‘बीज से फूल तक’ की यात्रा पौधे के साथ जीवन के विकास की भी यात्रा है। इन कविताओं में प्रकृति-सौंदर्य के साथ-साथ जीवन-सौंदर्य भी निहित है। कवि को प्रकृति के साथ मानव जीवन के सौंदर्य की भी चिन्ता रहती है। प्रकृति के साथ जीवन संत्रास का भी वर्णन इसमें एकांत जी ने बखूबी से किया है।

एकांत श्रीवास्तव का ‘बीज से फूल तक’ कविता संग्रह की कविताओं को कवि ने तीन खंडों में विभाजित किया है। इसके मध्यखण्ड, जिसे ‘निर्जन में फूल’ शीर्षक दिया गया है, उनके छोटे भाई के आकस्मिक निधन पर लिखी तेरह कविताएँ संकलित हैं। ये कवितायें श्राद्ध आदि के लिए निश्चित किए गए तेरह दिनों के भीतर ही लिखी गई कवितायें हैं। हिंदी काव्य जगत में भाई की स्मृति पर संभवतः ऐसा शोकगीत पहले नहीं लिखा गया है।

भाई के दुर्घटनाग्रस्त होने के एक रात पहले ही उनकी चिट्ठी एकांत जी को मिली। यह उसका अंतिम पत्र था। ‘भाई की चिट्ठी’ कविता में कवि कहता है - “हर पंक्तिजैसे फूलों की क्यारी है/जिसमें छुपे काँटों को वह नहीं जानता /वह नहीं जानता कि दो शब्दों के बीच /भयंकर साँपों की फुँफकार है/और डोल रही है वहाँ यम की परछाई”¹

हो सकता है कि भाई को अपनी मृत्यु से ठीक पहले इस बारे में कोई जानकारी न हो। क्योंकि पत्र में लिखा है कि फूल थे। उसने छिपे हुए काँटों को नहीं देखा। क्योंकि भाई जिंदगी के खूबसूरत पलों के बारे में ही सोच रहा था। इसी बीच अचानक हुई मौत की उसे जानकारी नहीं है। जीवन में होनेवाले नुकसान या त्रासदियों के बारे में हम कभी नहीं जानते हैं। भाई जीवन की सुंदरता का आनंद लेते हुए गुजरता है। उसने उन फूलों के बीच में काँटों को कभी नहीं देखा।

‘अभी वह हँस रहा है’ कविता में कवि अपने भाई की मृत्यु से पहले के क्षणों के बारे में कहता है- दोस्तों से विदा लेते हुए /अभी वह हँस रहा है/इस बात से अनजान /कि उसके और घर के बीच /घात लगाए बैठी है मृत्यु रास्ते में / अभी दस बजकर पच्चीस / मिनट हुए हैं / अभी वह हँस रहा है”²

भाई को नहीं पता कि उसकी मौत अगले ही पल हो जाएगी। मृत्यु बहुत अचानक और अप्रत्याशित रूप से आती है। मृत्यु छया की तरह हमेशा हमारे साथ रहती है। हम यह नहीं कह सकते कि वह किस क्षण हमें अपने वश में कर लेगा। कवि कहता है कि भाई को मृत्यु का पता नहीं है जो रास्ते में उसका इंतजार कर रही है।

‘आँखों पर हाथ धरे’ कविता में कवि मृत्यु की तुलना नींद से करता है। इसकी अभिव्यक्ति करते हुए कवि ने लिखा है- “आँखों पर हाथ धरे /वह सो रहा है/गहरी नींद में /घर के इतने करीब /घर से कितनी दूर /वह सो रहा

है/धरती के खुरदुरे बिछौने पर”³

कवि के भाई की मृत्यु हो गयी है और उसे देखकर कवि को लगता है कि भाई अपनी आँखों पर हाथ रखकर गहरी नींद में है। अन्तर तो इतना है कि पहले वह घर के भीतर सोता था तो अब घर के बाहर, बिल्कुल घर के करीब धरती के खुरदुरे बिछौने पर सो रहा है।

भाई की मौत के बाद परिवार और कवि पर दुख का पहाड़ टूट पड़ा था। ‘पाँचवें की याद’ कविता में लिखता है- “जब चार जन /एक जगह एक साथ होते हैं/तब पाँचवें की बहुत याद आती है”⁴

यहाँ कवि कहता है कि हम पाँच भाई बहन हैं, जिसमें सबसे छोटे भाई संजीव श्रीवास्तव (गुड्डू) जो अब इस दुनिया में नहीं है। अपने भाई की मृत्यु के बाद, जब बाकी चारों एक साथ हो जाते हैं तो उन्हें पाँचवें व्यक्तिकी याद आती है। कवि की मानसिक भावनाएँ इस कविता में हैं। कवि हमेशा उन खूबसूरत क्षणों की यादों में रहना चाहते हैं।

कवि ने ‘मृत्यु वाला घर’ कविता में लिखा है :- “मृत्यु वाले घर में /सब कुछ बुझ चुका होता है/सब कुछ बुझ जाने की निर्जनता में /जलता रहता है एक दिया /मृत्यु वाले घर में सब केवल देखते हैं/एक दूसरे को /चुपचाप/ कुछ बोलते नहीं”⁵

यहाँ कवि ने उस घर के माहौल का चित्रण किया है जहाँ किसी की मृत्यु हो गयी है। कवि कहता है कि घरों में

बहुत ही भयानक सन्नाटा होगा। वहाँ हवा भी बहुत धीमी चलती है। क्योंकि उस घर के करीब आने वाली हर चीज़ों में घर की और घर वालों की उदासी स्थानांतरित हो जाती है।

निष्कर्ष स्पष्ट से कह सकते हैं कि एकांत श्रीवास्तव की ‘बीज से फूल तक’ कविता संग्रह की इन कविताओं में मृत्युबोध की अभिव्यक्ति बहुत मार्मिक ढंग से हुई है। उनकी हर कविता इतना सजीव है कि जो पाठकों के मन को छूने में पूर्णतया सफल है।

संदर्भ ग्रंथ सूची

1. बीज से फूल तक, एकांत श्रीवास्तव (कविता भाई की चिट्ठी), पृ.सं. 101
2. वही, (कविता अभी वह हँस रहा है), पृ.सं. 104
3. वही, (कविता आँखों पर हाथ धरे), पृ.सं. 105
4. वही, (कविता पाँचवें की याद), पृ.सं. 115
5. वही, (कविता मृत्यु वाला घर), पृ.सं. 108

शोध निदेशक : प्रो (डॉ) ज्योति एन

हिंदी विभाग, सरकारी वनिता कॉलेज
तिरुवनंतपुरम - 14

शोध छात्रा

राजकीय महिला महाविद्यालय, तिरुवनंतपुरम

प्रश्नोत्तरी उत्तर

1. गायत्री कमलेश्वर
2. उपेंद्रनाथ अशक
3. राकेश वत्स
4. महिमा मेहता
5. धनंजय
6. जयशंकर प्रसाद
7. एकालाप
8. लल्लू लाल
9. जंभनाथ

10. परमानंददास
11. कुंभनदास
12. रामसहाय
13. नगेंद्र
14. बालकृष्ण शर्मा नवीन
15. लक्ष्मीनारायण लाल
16. निर्मल वर्मा
17. आलोचना
18. डॉ जे रामचंद्रन नायर
19. संजीव
20. प्रभाकर माचवे

प्रवासी साहित्य में चित्रित वृद्धावस्था डॉ. षेलिन



मानव जीवन की परिवर्तित अवस्थाओं का अंतिम पड़ाव है -वृद्धावस्था। जीवन की संध्याकाल - वृद्धावस्था में जीवन के उतार -चढ़ावों, संघर्षों एवं पीड़ाओं को भोगते - लड़ते हुए अंतिम पड़ाव पर पहुँचते -पहुँचते शारीरिक एवं मानसिक दुर्बलताओं का आगमन हो जाता है। ऐसी अवस्था में व्यक्ति अपनी संतान का साथ और प्रेम चाहता है। आज की पीढ़ी के पास अपनी बुजुर्ग पीढ़ी के लिए समय और संवेदना दोनों ही नहीं रही है। अच्छी नौकरी एवं विवाह के होते-होते कुछ बच्चे जानबूझकर और कुछ अनजाने ही बुजुर्गों को अनदेखा कर देते हैं। भारतीय एवं प्रवासी साहित्यकारों ने अपनी अपनी रचनाओं में इस अवस्था को बड़ी खूबी से उकेरा है। नीना पॉल, सुषमा बेदी, इला प्रसाद, अर्चना पैन्वूली, हंसा दीप, पुष्पिता अवस्थी, शैल अग्रवाल, तेजेंद्र शर्मा आदि प्रवासी कहानीकारों ने अपनी कहानियों में भारतीय एवं पश्चिमी संस्कारों को बड़ी खूबी के साथ चित्रित किया है। भारतीय बड़े जोर शोर के साथ कहते हैं कि हमारी संस्कृति सबसे श्रेष्ठ है, वह अनुकरणीय है लेकिन भारत भी पाश्चात्य संस्कृति से प्रभावित हो गया है। पाश्चात्य देशों का अनुकरण तो हम भारतीय करते हैं। पाश्चात्य राज्यों में जिस प्रकार ओल्ड एज होम है उसी प्रकार भारत में वृद्धाश्रम शुरू हो गया है। नीना पॉल का घर बेघर, इला प्रसाद का 'उस स्त्री का नाम', अर्चना पैन्वूली का 'हैप्पी बर्थडे गोल्डन होम' में उन भारतीय वृद्धजनों की कसम कहानी है जो अमेरिका के वृद्धाश्रमों में अपना जीवन यापन कर रहे हैं।

'घर बेघर' नीना पॉल की कहानी है जिसमें बच्चों की घोर उपेक्षा के शिकार बनकर वृद्धाश्रम में जाने वाले एक विधुर बुजुर्ग जनरैल सिंह लांबा की दर्दनाक कहानी है

साथ ही साथ पीटर और एलिजबेथ की भी कसम कहानी का अंकन हुआ है।

जनरैल सिंह लांबा की पत्नी बहुत ही कम उम्र में दो बच्चों को छोड़कर स्वर्ग सिंधार गई। माँ के बहुत कहने के बावजूद जनरैल सिंह लांबा दूसरी शादी नहीं करते और अपने बच्चों की अच्छी परवरिश का ख्याल रखते हुए अमेरिका में ही बस जाते हैं। बेटा बड़ी होकर कनाडा में बस जाती है और जनरैल सिंह लांबा अपने पुत्र और उसके परिवार सहित अमेरिका में ही बस जाते हैं। एक दिन सर्जरी के बाद घर जाने के लिए उत्सुक जनरैल लंबा अपने बेटे का इंतजार करते हैं लेकिन उनका पुत्र अपनी बीबी के डर से उन्हें बुलाने नहीं आता। बहू जसमिंदर कहती है - "हजारों लोग होम में रहते हैं प्रीतम। आपके पापा जी कोई विरले इंसान नहीं होंगे वहाँ रहने वाले। मैं फुल टाइम जाँब करती हूँ, फिर बच्चों की देखभाल, खाना बनाना, घर देखना ऊपर से बीमार पापा जी की देखभाल मुझसे नहीं होगी। आखिर मैं भी तो इंसान हूँ प्रीतम।" जनरैल सिंह लांबा ने बच्चों को बड़ी तकलीफें सहकर उनका पालन पोषण किया था। उन्हें अपने परिवार पर मान था। लेकिन आज वे, बच्चों लिए बोझ बनकर रह गये। बच्चों ने उनको घर से बेघर करके किसी को भी मुंह दिखाने के काबिल नहीं छोड़ा। लेकिन जनरैल सिंह जल्दी ही हार मानने वालों में नहीं थे। उन्होंने अपने घर के बाहर 'सेल' का बोर्ड लगवा दिया जिसे देखकर बहू तिलमिला गई और गुस्से से कहती है -पापा जी की यह हिम्मत। हमसे पूछे बिना वह हमारे घर को सेल पर कैसे लगा सकते हैं। आने दो प्रीतम को आखिर उसके बाप ने अपनी औकात दिखा ही दी। "कितनी बार प्रीतम से कहा था कि घर के कागजात पर

साइन करवा लो पापा जी से ।कोई मेरी सुने तब ना ।अब भुगतो ।यह बोर्ड हटाने के लिए मजबूरन बुढ़े को घर लाने का ढोंग करना ही पड़ेगा।”² इस तरह वह अपने पति को लेकर जनरैल सिंह लांबा से मिलने जाती हैं और मगरमच्छ के आंसू बहाकर घर चलने की प्रार्थना करती है। जनरैल लांबा गुरसे से कहते हैं - प्रीतम अपनी घरवाली को बोल यह मगरमच्छ के आंसू संभाल कर रख कहीं और काम आएंगे। मगरमच्छ के आंसू जितने ठंडे होते हैं दांत उतने ही तेज। मैंने दोनों ही देख लिए हैं। पुत्र आंसू वह जो इस बूढ़े की आंखों से बहे थे। दिल का खून कतरा कतरा टपक टपक था इन पलकों से जब तुमने मुझे अपने ही घर से बेघर किया था। अरे ना शुकरो किसके लिए यह सब ढोंग रचाए जा रहे हैं। इस कागज के टुकड़े के लिए। यह तो वैसे भी तुम्हारा ही था। “यह लो (जनरैल सिंह ने घर के कागज दूर फेंकते हुए कहा) ये लो उठाओ इस फसाद की जड़ को और इससे पहले कि इस बूढ़े के मुँह से कोई अपशब्द निकल जाए दूर हो जाओ मेरी नजरों के सामने से। आज मैं अपने आप को लावारिस घोषित करता।”³

इला प्रसाद की कहानी ‘उस स्त्री का नाम’ में अपनी नौकरी से स्वैच्छिक सेवानिवृत्ति लेते हुए अमेरिका में आकर वृद्धाश्रम में शरण लेने वाली एक वृद्ध महिला की कस्रण कहानी है। फिल्म थिएटर के बाहर शालिनी और राजेश की मुलाकात उस वृद्ध महिला से होती है जो अपने घर तक राइड मांगती है। रास्ते में वह अपने पुत्र सोमेंद्र के बिजनेस रियल एस्टेट आदि का जिक्र करती है। वह कहती है - “सोमेंद्र को फुर्सत ही नहीं। सारे वक्त लगा रहता है। कारोबार तो जितनी मेहनत करोगे बढ़ेगा। आक्शन में घर खरीदता है फिर रिनोवेट करके बेच देता है।”⁴ बीच-बीच में अपनी बेटी के लिए लड़का देखने की बात भी करती हैं। राजेश और शालिनी सोचते हैं कि यह वृद्ध महिला अपने बेटे के साथ रहती हैं, उसका आलीशान बंगला होगा।

क्योंकि वह बीच-बीच में कह चुकी है कि उसका बेटा बहुत अमीर है। लेकिन जब उस वृद्ध महिला के उतरने का स्थान आता है तब राजेश और शालिनी चौक पड़ते हैं क्योंकि वह एक ओल्डएज होम था। वह महिला कहती है - “गवर्नमेंट सारा खर्च देती है रिटायर हुई जब नौकरी से तब से यही रहती हूँ। बस 33% मुझे भरना है बिजली, पानी सब फ्री। ओल्ड एज लोगों का जो रिटायरमेंट होम होता है ना वही है। यही रहती हूँ।”⁵

अमेरिका का संस्कार ही कुछ ऐसा है कि बच्चे कुछ बड़े हो जाने पर अपना अलग ठिकाना ढूँढ लेते हैं। फिर वृद्धावस्था में ओल्डएज होम में जाकर रहने लगते हैं। लेकिन भारत का संस्कार इससे बिल्कुल भिन्न है। माता-पिता दिन-रात परिश्रम करके मरते दम तक अपने बच्चों का साथ देते हैं और बच्चे भी बड़े बुजुर्गों का आदर सम्मान करते हैं और उनके सायंकाल में बच्चे सहारा बनते हैं।

अर्चना पैन्थूली की कहानी है- ‘हैप्पी बर्थडे गोल्डन होम’ इसमें लेखिका ने एक नब्बे वर्षीय कर्नल गावकर की कहानी बताई है जो ओल्ड एज होम में रहते हैं। उनके दो बेटे अमेरिका और दो बेटियाँ भारत में रहती हैं। कर्नल राघवन गावकर की बीवी मध्यवयस में ही किसी बीमारी के कारण मर जाती है। बीवी की मृत्यु के बाद कर्नल गावकर शादी नहीं करते। बच्चों की परिवेश में ही अपना जीवन बिताते हैं। बूढ़े होने पर भी अपनी बेटियों के घर जाकर रहना पसंद नहीं करते। बहुत मनाने के बाद वे अपने बेटों के पास अमेरिका जाने को राजी हो जाते हैं। उनकी पहली यात्रा में उनके दोनों बेटों और उनकी बीवी बच्चों ने उनकी खास खातिरदारी की। लेकिन दूसरी बार जब कर्नल अमेरिका गए तब उनके बच्चों ने ओल्ड एज होम का प्रस्ताव उनके सामने रखा उनका बेटा अशोक कहता है - “हम बहुत व्यस्त लोग हैं। हमारे पास इतना समय नहीं है कि हम हर

समय आपकी देखभाल कर सके। हमें डर भी रहता है कि आप दिन भर घर में अकेले रहते हैं कहीं आप इधर-उधर गिर गए तो हमारी और भी आफत आ जाएगी। हम सोच रहे हैं कि आपकी किसी अच्छे ओल्डएज होम में रहने की व्यवस्था कर दें। वहाँ बूढ़ों की बहुत अच्छी देखभाल होती है वहाँ आपको अन्य बूढ़ों की कंपनी भी मिलेगी। हम आपसे मिलने आते रहेंगे।”⁶ अशोक अपनी बात को और तूल देते हुए कहते हैं - “हाँ पापा यहाँ यही कलचर है सभी लोग बूढ़े हो जाने पर ओल्डएज होम में ही रहते हैं। बच्चों के साथ कोई नहीं रहता। कैथरीन के डैड भी ओल्डएज होम में ही है।”⁷ कर्नल गावकर यह सुनकर भडक उठते हैं और कहते हैं कि- “हम लोग अपने बच्चों की खुशी के लिए अपना पूरा जीवन ही दाव में लगा देते हैं। यह मत भूलो कि कभी तुम भी बूढ़े होंगे।”⁸

कर्नल गावकर गाँव जाकर पहले अपने घर में अकेले रहते हैं फिर ओल्ड एज होम में रहने लगते हैं। उनकी चार संताने और नौ पौत्र पौत्रियों में से सिर्फ उनकी बड़ी बेटी उनसे मिलने पिछले पांच सालों से आया करती थी। एक दिन उनकी बेटी कहती है - “पिताजी अब लगता है मुझे भी जल्दी ही गोल्डन होम में आकर रहना पड़ेगा। पिताजी आप क्या सोचते हैं? सिर्फ आपकी ही उम्र बढ़ रही है मैं भी अब पैंसठ की हो गई हूँ। बूढ़ी हो गई हूँ। अपने बच्चों की नजर में खटकने लगी हूँ।”⁹

परिवार से मुक्त होना हमारे लिए वैसा ही है जैसे कि देह से प्राण का मुक्त होना। किंतु पारिवारिक मूल्यों को हमने सुविधानुसार समंजित किया है। हम पहले संयुक्त परिवार में रहते थे जो अपने अंदर ऐसी बातें रखते थे जिससे दो प्रकार की जोखिमों अर्थात् अकाल मृत्यु तथा दीर्घ जीविता की भरपाई हो जाती थी। यदि परिवार में किसी व्यक्ति चाहे वह पुरुष हो या स्त्री की अकाल मृत्यु हो जाती थी तो विधवा या विधुर को रोटी पानी की समस्या नहीं होती थी

तथा उसके बच्चे अनाथ भी नहीं होते थे। इसी प्रकार किसी व्यक्ति की अतिदीर्घजीवन की अवस्था में भी परिवार उसे अकेलापन नहीं महसूस होने देता था और उसके कष्टों एवं बीमारियों की जिम्मेदारी भी उठाता था। प्रस्तुत कहानियों के तीनों बुजुर्ग-जनरल लांबा, वृद्ध महिला और कर्नल गावकर अगर हमारी इसी पैतृक संस्कृति के अंदर रहते तो उनको ओल्डएज होम जाने की नौबत नहीं आती। वे आराम से हँसी खुशी अपनी बाकी की जिन्दगी बाल बच्चों समेत बिता सकते थे। आधुनिकीकरण एवं पश्चिमीकरण के प्रभाव में हमारे परिवार छोटे होने शुरू हो गये जो संयुक्त परिवार से चलकर एकल परिवार तथा नाभिकीय परिवार की स्थिति तक आ गया है। आधुनिकता की एक ऐसी हवा हमारे बीच चली है कि हमारे संस्कार हमसे छूट गए हैं। भारतीय हो या अमेरिकी अस्सी प्रतिशत बड़े बुजुर्ग आज ओल्डएज होम को ही अपना आश्रय समझते हैं।

संदर्भ ग्रंथ सूची

- 1 वृद्ध जीवन की कहानी -डॉ एम फिरोज खान -विकास प्रकाशन -कानपुर -पृष्ठ -231
- 2 वही पृष्ठ - 235
- 3 वही पृष्ठ -237 - 238
- 4 वही पृष्ठ 211
- 5 वही पृष्ठ -205
- 6 वही पृष्ठ -205
- 7 वही पृष्ठ-206
- 8 वही पृष्ठ-207

असोसिएट प्रोफसर
सरकारी संस्कृत कॉलेज, तिरुवनंतपुरम

केरलप्योति
दिसंबर 2024



आत्मकथा



देवयानम्

अनुवाद : प्रो. के.एन.ओमना

मूल : डॉ.वी.एस. शर्मा

तेरहवाँ देवपद - विश्वविद्यालय में

(पूर्वप्रकाशित से आगे)

जब मैं केरल विश्वविद्यालय में भर्ती हो गया था तब वहाँ के प्राच्य संकाय (Oriental faculty) तथा विभाग का काम महान पंडित डॉ.पी.के.नारायण पिल्लै कर रहे थे। वे तो उस समय संस्कृत कॉलेज के प्रिंसिपल थे। बाद में 1961-62 को संस्कृत एवं मलयालम दोनों भाषाओं के अलग-अलग विभाग हुए और दोनों विभागों के लिए अलग-अलग अध्यक्ष नियुक्त हो गये थे। डॉ ए सी कृष्ण वारियर संस्कृत विभाग के रीडर तथा अध्यक्ष नियुक्त हो गए और डॉ पी के नारायण पिल्लै मलयालम विभाग के अध्यक्ष हो गए। 1970 को नगर से कुछ दूर पर कार्यवट्टम नामक स्थान पर मलयालम विभाग के लिए एक नया मकान सुसज्जित हो गया। उसके पहले ही विभाग में कुछ और अध्यापकों की नियुक्ति भी हो गई थी। उनमें प्रमुख थे - श्री रामचंद्रन नायर, श्री पुतुशेरी रामचंद्रन, श्री पी.वी.वेलायुधन पिल्लै, श्री वी एस शर्मा आदि। हमारे विभाग में एम ए की पढ़ाई होती थी साथ ही विद्यार्थियों को एम फिल तथा पी एच डी करने की व्यवस्था भी थी। कभी कभी मलयालम भाषा-साहित्य के प्रतिष्ठित साहित्यकार एवं गुरुजन हमारे यहाँ आकर विद्यार्थियों को पढ़ाते या भाषण देते थे। उनमें प्रमुख थे : डॉ.एस के नायर, श्री एस गुप्तन नायर, श्री एन कृष्णपिल्लै, डॉ. के एम जॉर्ज आदि। “भाषा साहित्य” नामक एक त्रैमासिक का प्रकाशन भी हम करते थे। इस प्रकार विभाग के उत्तरोत्तर विकास के लिए विश्वविद्यालय के सहयोग से सारे अध्यापक और हरेक विद्यार्थी भी जुट कर प्रयत्नशील थे।

1969 अप्रैल के पहले दिन को मैं विश्वविद्यालय का अध्यापक बन गया था। 1978 नवंबर को मैं विभाग का रीडर हो गया तथा 1984 दिसंबर को प्रोफसर भी हो गया। 1990 अप्रैल से 1996 मार्च 31 तक मैं विभाग का प्रोफसर एवं अध्यक्ष था। प्राच्य संकाय का डीन (अध्यक्ष) बोर्ड ऑफ स्टडीस (Board of studies) का अध्यक्ष, एम ए तथा एम फिल की परीक्षाओं के बोर्ड का अध्यक्ष, सेनट का सदस्य आदि विश्वविद्यालय के महत्वपूर्ण उन्नत पदों के दायित्वों का निर्वहण बड़ी सफलता से मैं कर सका। इसके अतिरिक्त मैं 1984 से 1986 तक महात्मा गाँधी विश्वविद्यालय (कोट्टयम) के डीन ऑफ फाइन अर्ट्स (Deen of Fine Arts) का दायित्व भी निबाहता था। उसी प्रकार 1993-1996 के समय पर केरल कलामण्डलम नामक विश्व विख्यात सांस्कृतिक संस्था का मैं अध्यक्ष था। इतना ही नहीं, किल्लीक्कुरिशिमंगलम के (मलप्पुरम जिला) “कुंचन स्मारक” के और राजधानी के ‘मार्गी’ नामक सांस्कृतिक संस्था के भी अध्यक्ष का भार मैंने अच्छे ढंग से संभाला था। वैसे ही “स्वाति तिरुनाल् संगीत सभा” तथा कथकली क्लब की शासन-मंडली का अंग बनकर दोनों सांस्कृतिक संस्थाओं की सेवा करने का सुअवसर भी मुझे मिला था। यह मेरा बड़ा सौभाग्य है कि केरल विश्वविद्यालय के अतीव गौरवपूर्ण दायित्वों के साथ इतनी बड़ी दूसरी संस्थाओं के संचालन में मैं सहयोग दे सका।

केरल विश्वविद्यालय में अध्यापक का काम करते हुए 1974 में मैंने अपनी पीएच डी भी की। अपने वंदनीय आचार्य श्री डॉ पी के नारायण पिल्लै

केरलप्रीति

दिसंबर 2024

की प्रेरणा से उन्हीं के उपदेश एवं निरीक्षण में मलयालम भाषा के सर्वप्रथम एम.लिट और पीएच.डी के प्रबंध में समर्पित किये थे और मुझे वे उपाधियाँ दी गई थीं। फिर उन्हीं के साथ विभाग में काम करने का सौभाग्य मिला था। महाकवि उल्लूर के नाम पर 'उल्लूर स्मारक' नामक संस्था के स्थापक एवं अध्यक्ष थे डॉ. नारायण पिल्लै। उन्होने मुझे उसका उपाध्यक्ष बनाकर उनके साथ काम करने का और भी अवसर दिया। बाद में उन्होंने ही मुझे इस संस्था के अध्यक्ष बना दिया। इस अवसर पर भारत के प्रथम राष्ट्रपति डॉ. एस राधाकृष्ण ने इस संस्था में आकर भाषण दिया था और समस्त केरल साहित्य परिषद् के वार्षिक समारोह का उद्घाटन भी किया था। इस संस्था की ओर से श्री वटक्कुमकूर रामराज वर्मा की जन्मशती का समारोह बड़े धूमधाम से हुआ था। इसके लिए भारत सरकार की आर्थिक सहायता भी मिली थी। बहुसंख्यक श्रेष्ठ साहित्यकारों ने उसमें अपना योग दिया था और 'राजपथ' नामक एक स्मरण पत्र का प्रकाशन भी हुआ था।

केरल विश्वविद्यालय में अध्यापक का काम करने के साथ ही दूसरे बहुत से दायित्वों एवं कर्तव्यों के निर्वहन के लिए मौके मिले थे; मुझे यह बड़े संतोष की बात थी। विविध विषयों पर अनुसंधान कर मैंने लेख और निबंध लिखकर प्रकाशित किए थे। विभिन्न विषयों पर अनेक समारोहों में मैंने भाषण दिए थे। विवेकानंद इंस्टिट्यूट में जिसका मैं सेक्रेटरी था, भगवद् गीता एवं उपनिषद् पढ़ाता था। कोट्टक्कल आर्यवैद्यशाला के तिरुवनंतपुरम की शाखा के प्रथम डॉक्टर थे श्री रामनकुट्टी वारियर जिनके साथ मेरा भाई जैसा नाता था। उनके पिता जी महान पंडित श्री देशमंगलत्तु राम वारियर थे। उनके कुछ निबंधों का संकलन कर मैंने एक पुस्तक प्रकाशित किया था। उसकी भूमिका भी मैंने लिखी थी। उस पुस्तक का नाम 'आर्षसाहिति' है।

इसी बीच और भी रचनाएँ मैंने की थीं। उनमें प्रमुख है 'श्री स्वाति तिरुनाळ् : जीवनी एवं

कृतियाँ'। श्री उत्राटम तिरुनाळ् महाराजा ने श्री स्वाति तिरुनाळ् संगीत सभा के सम्मेलन में इस पुस्तक का प्रकाशन किया था। इसका संशोधित संस्करण भाषा इंस्टिट्यूट के द्वारा बाद में प्रकाशित किया गया था। मुख्यमंत्री श्री उम्मन चाण्डी ने इस पुस्तक का प्रकाशन किया था। नगर के सुप्रसिद्ध "कनकाक्कुन्नु ऑडिटोरियम" के प्रतिष्ठित दर्शकों की सभा में उन्होंने यह गौरव पूर्ण कार्य किया जिससे पुस्तक का महत्व और भी बढ़ गया।

उसी प्रकार मेरा दूसरा एक ग्रंथ है "बालराम भरतम" नामक नाट्यशस्त्र का ग्रंथ। श्री कार्तिका तिरुनाळ् महाराजा के द्वारा संस्कृत भाषा में रचित इसकी मूल कृति बिलकुल अलभ्य थी। हस्तलिपियों की ग्रंथशाला से मुझे यह ग्रंथ मिला था और मैंने उसे सटीक अध्ययन के साथ मलयालम भाषा में 1981 को प्रकाशित किया था। आठ सौ से अधिक पन्ने में इस बृहद् ग्रंथ की रचना हुई है। श्री स्वाति तिरुनाळ् संगीत सभा के सम्मेलन में श्रीमती कार्तिका तिरुनाळ् लक्ष्मीबाई ने कलामर्मज्ञ श्री डी.अप्पुक्कुट्टन नायर को यह पुस्तक देकर इसका औपचारिक प्रकाशन किया था। जब मैंने यह ग्रंथ श्री चित्तिरा तिरुनाळ् महाराज को समर्पित किया था तब उन्होंने मेरी प्रशंसा इन शब्दों में की थी-"you highly deserve a D.Litt. Degree for this wonderful work" (इस महत्वपूर्ण लक्ष्यप्राप्ति के लिए आपको अवश्य ही डी.लिट की उपाधि मिले।) धन्यवाद देकर मैंने उनका प्रणाम किया था; मैं कुछ और कह न सका। इसके पहले जब मैंने अपनी पुस्तक 'श्री स्वाति तिरुनाळ् : जीवनी और कृतियाँ' उन्हें समर्पित की थी तब भी उन्होंने मेरी प्रशंसा की थी।

महाराजा श्री चित्तिरा तिरुनाळ् का यह अनुग्रह दस वर्ष के बाद सत्य निकला। 1992 के केरल विश्वविद्यालय के सिंडिकेट ने उसकी सर्वप्रथम डी.लिट् की उपाधि देकर मेरे कठिन परिश्रम का मूल्य चुका दिया। भगवान ने मेरी प्रार्थना सुनी।

(क्रमशः)

केरलप्योति
दिसंबर 2024



मूल : श्रीकृष्णरन तंती

आत्मकथा

ज़िंदगी : एक लोलक



अनुवाद : डॉ.पी.जे.शिवकुमार

माँ महल के उत्तरी दरवाजे से अंदर प्रवेश करके मुख्य दरवाजे तक पहुँची। डर के मारे खड़े हुए मुझे डांटने के स्वर में माँ ने कहा : जाकर बड़े दादाजी के पैरो को छूकर नमस्कार करो। मैं डरते डरते दादाजी के पैरों को छूकर औंधे मुँह से गिर पड़ा। “अरे उठ जा... क्या तेरी माँ आयी हैं?” मैं डरकर जब पीछे की ओर चला तो दरवाजे की ओर से माँ ने भयमिश्रित शब्द में बताया: “भवानी हूँ। मुझे बड़े भाई से एक दुख की बात बतानी है...”

“क्या दुख की बात बतानी है? मैंने सोचा कि तूने तेरे बड़े भाई के लिए कोई खजाना लाया है।” “मुझमें उसकी क्षमता तो नहीं रही न बड़े भाई। पुत्र परिवार में मैं आज सब से नीचे हूँ।”

चाचाजी आराम कुरसी से कूद कर उठ खड़े हुए। माँ के पास आए। भाई अपना मुख न देख पाने के लिए माँ कुछ और पीछे खड़ी हो गई।

“किसका दोष है? तेरी संपत्ति सब कहाँ गई? तेरे प्यारे भाई ने रियासत का शासन करने और लोगों के बीच मुखिया बनने के लिए जायदाद बेचकर नष्ट कर दिया। तेरी जायदाद का आधा तो अंबु ने ही नष्ट किया न? उसने जो कागज़ दिखायी, उन सब पर तूने दस्तखत कर दी न? सिर्फ यही नहीं, तेरे पति का जीवन सही न समझने पर मैंने करिम्बालेतु आकर उसे छोड़ देने के लिए तुझसे कहा था न? यह तो तेरे चौथे प्रसव की संतान है न? सिर्फ मैं ही नहीं, तुझे छोड़कर, पुत्र खानदान के सभी लोगों ने कहा; हमें यह रिश्ता नहीं चाहिए। पुत्र तांकळवालो का परिवार...! कहते हैं कि कार्यकुलं राजा ने तांकळ स्थान दिया था। शिक्षा एवं विवेकहीन लोग...! जायदाद

के नाम पर मार-पीट करनेवाला परिवार। तेरे पिता के भातीजो मे से एक ने, जब तू स्कर्ट पहनकर चलती थी, तबसे हम सब से कहा था कि उसे भवानी चाहिए....। तेरे पिता के परिवार की आधी जायादाद उसके नाम पर है। मालूम है क्या? तुझे पत्नी बनाने के लिए अब भी वह तैयार है। इन बच्चों को भी वह स्वीकार करेगा। क्या कहती हो? बड़े चाचा जी को विषय टालते हुए देखकर माँ ने कोमल स्वर में प्रार्थना के समान कहा : “बड़े भाई जो कह रहे उसका उत्तर तो मैंने पहले से ही कहा था न? मेरे बच्चों से दूसरे एक ब्यक्ति को पिता कहकर पुकारना मैं नहीं चाहती....अगर वे बुरे हैं तो वही सही। पर उनके ही बच्चे मुझे माँ कहकर पुकारते हैं। सब मेरी नियति है...”

चाचाजी का क्रोध बढ़ गया।

सब नियति पर छोड़ा है तो फिर इस लडके को हाथ में पकड़ती हुई यहाँ तक पधारी क्यों थी?

मुझे स्पये या अनाज नहीं चाहिए। घर की छवाई के लिए तीन हज़ार तने नारियल के पत्ते देना काफी है। बड़े भाई के अहातों से मिलनेवाले नारियल के पत्तों का हिस्सा इसके लिए काफी होगा।

तीन हज़ार तो क्या, नारियल के पत्ते का एक टुकड़ा मैं नहीं दूँगा। तू निषेधी है... स्त्रियाँ अगर निषेधी बन जाय तो परिवार का सर्वनाश होगा। देश का सर्वनाश होगा..।

“बड़े भाई को छोड़कर मैं किससे पूछूँगी? मेरे दोनों बड़े भाई मुझे अनाथ बनाकर ऊपर तो चले गए थे न... अब मुझे क्या करना है?”

मेरे बड़े चाचाजी, विष वैद्य और आभिचारक स्त्री तंपी महोदय ने आंगन में उतर कर पेरु कुलं की ओर दायें हाथ से इशारा करते हुए राक्षस भाव में कहा: “यही पेरु कुलं है... तू अपनी तीनों संतानों को उसमें फेंक दो। फिर तू भी कूद कर मर जा। यही तेरी नियति है....।”

मेतियड़ियों (लकड़ी से बना विशेष जूता) में पैरों को टिका कर चाचाजी परिवार के मंदिर के आगे की ओर चले। माँ मुझे हाथ से पकड़ती हुई बड़े महल की सीढ़ियाँ उतरी। पेरु कुलम के किनारे आकर माँ ने हरे रंग के पानी की ओर देखा। मुझे डर लगा... भयभीत होकर मैंने पूछा: क्या माँ मुझे तालाब में फेंक देगी?

माँ ने मेरी जाँघ पर जोर से मारा। पाँच साल की उम्र के मुझे कमर पर बिठाती हुई दायें हाथ में छतरी पकड़कर बहुत जल्दी माँ चल पड़ी....

करिंबालेत्तु भवानियम्मा नामक मेरी माँ ने अपनी तीनों संतानों को मंदिर के तालाब में नहीं फेंकी। कमियों और दोषों से युक्त पति को छोड़ा नहीं। उनके दो औ बच्चों को भी जन्म दिया। इस तरह हम पाँच हो गए... धूप में चलने और कठिन काम करने के लिए माँ ने हमें उपदेश दिया... इस तरह पाँचों पुत्र बड़े हुए....

मेरी आत्मकथा माँ से ही शुरू करना है। कारण, मैं माँ के बाद की कड़ी हूँ।

“माँ से शुरू किए बिना/ कैसे मैं गाउँ सत्य गान/ वह स्नेह दुग्ध/बिना पान किए कैसे/भलाई का गीत गाउँ मैं/सत्य का नाम है माँ/भलाई का नाम है माँ/ आसमाँ और भूमि है माँ...”

दक्षिणायनम

मेरी माताजी के मूल परिवार की जड़ें उत्तरी केरल में हैं। चेरु कुन्नु, अन्नपूर्णारी, कडलायि कृष्णन, कळरिवातिल्वकल भगवती, माडायिक्काविलम्मा आदि को आज भी हम अपने पूज्य देवताओं के रूप में मानते आ रहे हैं। हरिप्पाट्टु सुब्रह्मण्य मंदिर के सामने से हमारे खानदान की ओर बस कुछ ही दूरी है। संध्या भजन का जाप करते समय सुब्रह्मण्य स्तुति के बाद

चेरु कुन्नु अन्नपूर्णेश्वरी के स्तोत्र का जाप करना चाहिए था। ये सब माँ की निष्ठायें थीं।

“मेहन्दी पुष्प से मिलकर खेलती/सुन्दर तेरे तन की पूजा करूँ जय जय/हे सुन्दर स्त्रीपिणि गिरि तनये, छोटी / पहाड़ी से उठ आई हे मा जय जय.....

ऐसे शुरू होनेवाला एक लम्बा लोक गीत है यह। माँ के द्वारा गाए जानेवाली लोरियों में भी सिर्फ उत्तरी मलबार में प्रचलित लोक गीत शामिल थे। मेरे पूर्वज, एक हत्या करने के बाद चिरक्कुलं राजमहल से बचकर तिरु वित्तिकूर में पहुँचनेवाले थे।

कासरगोड के उस पार चंद्रगिरि नदी और वडाकरा के कोराप्पुष्पा नामक स्थान के बीच स्थित एक प्रदेश है कोलत्तुनाडु नाम से प्रसिद्ध देश। कोलत्तुनाडु का शासन करनेवाले राजा ‘कोलत्तिरि’ नाम से जाने जाते थे।

पय्यन्नूर के पास समुद्र तट पर समुद्र की ओर उभर कर पड़ा हुआ अकेला बड़ा पहाड़ है एषमिला। कहा जाता है कि भगवान श्री बुद्ध यहाँ पधारे थे। संघ कवियों के काल में यह बंदरगाह तमिष्रकं (तमिलनाडु) का हिस्सा था। उस समय केरल प्रदेश के तीन मुख्य बंदरगाह एषमिला, कोषक्कोड, कोल्लम आदि थे। एषमिला युक्त तमिष्रकं का शासन करनेवाले पांड्य राजाओं में सबसे प्रसिद्ध थे ‘नन्नन्’। चैरा राजा को विभिन्न युद्धों में पराजित करनेवाले नन्नन् नामक ‘मन्नन्’ (वीर योद्धा) के बारे में प्राचीन तमिल साहित्य की मुख्य रचनायें रू पी ‘अकानानूर’ एवं ‘पुरानानूर’ में वर्णन हुआ है। नन्नन् नामक राजा की मृत्यु के बाद ‘वळभन’ नामक राजा ने ‘मूषिकवंश’ की स्थापना की। कोलत्तिरि के लोग ‘मूषिकवंश’ में आनेवाले हैं। श्री वळभन प्रथम कोलत्तिरि है। अठारहवीं सदी के मध्य तक यह देश कायम था। वळभन द्वारा संस्थापित वळभट्टणम ही आज का वळभट्टणम है। प्रारंभ में राजधानी एषमिला थी। बाद में राजधानी को कण्णूर के चिरक्कल की ओर बदल दिया गया।

(क्रमशः)